दाम्पत्य सुख

(ASTROLOGY and MARRIAGE)

ज्योतिष के झरोखे से

जीवन की मधुरता, सन्तान, सम्पत्ति व अन्य कड़वे-कसैले प्रसंग आदि

पुस्तक-परिचय

दाम्पत्य सुख—"एक ज्योतिष शास्त्रीय अध्ययन" हिन्दी भाषा में पहली बार 'प्रकाशित एक ऐसा अनूठा ग्रन्थ है, जिसमें दाम्पत्यसुख, दाम्पत्य-सम्बन्ध एवं दाम्पत्य जीवन के समस्त पहलुओं तथा दाम्पत्य जीवन में उत्पन्न होने वाली अधिकांश समस्याओं के समाधान का सांगोपांग शास्त्रीय रीति से विवेचन किया गया है।

अनेक ग्रन्थों के प्रणेता तथा ज्योतिष शास्त्र के प्रख्यात विद्वान लेखक ने प्रस्तुत ग्रन्थ में ज्योतिष शास्त्र के आधार भूत सिद्धान्तों के अनुसार वर-वधू का चुनाव उनके गुण दोषों का विवेचन, नक्षत्र एवं ग्रह-मेलापक, मंगलीयोग, विवाह होने का समय, [illegible]ें बाधाओं के कारण, उनका निराकरण ए[illegible]न सुख जैसे गम्भीर प्रश्नों का सरल, सहज, बो[illegible]ली में प्रतिपादन किया है।

दाम्पत्य सुख जैसे महत्त्वपूर्ण विषय पर हिन्दी भाषा में लिखित यह सर्वांग पूर्ण ग्रंथ ज्योतिष शास्त्र के विद्वान् एवं ज्योतिष प्रेमी पाठकों के लिए समान रूप से पठनीय एवं संग्रहणीय है।
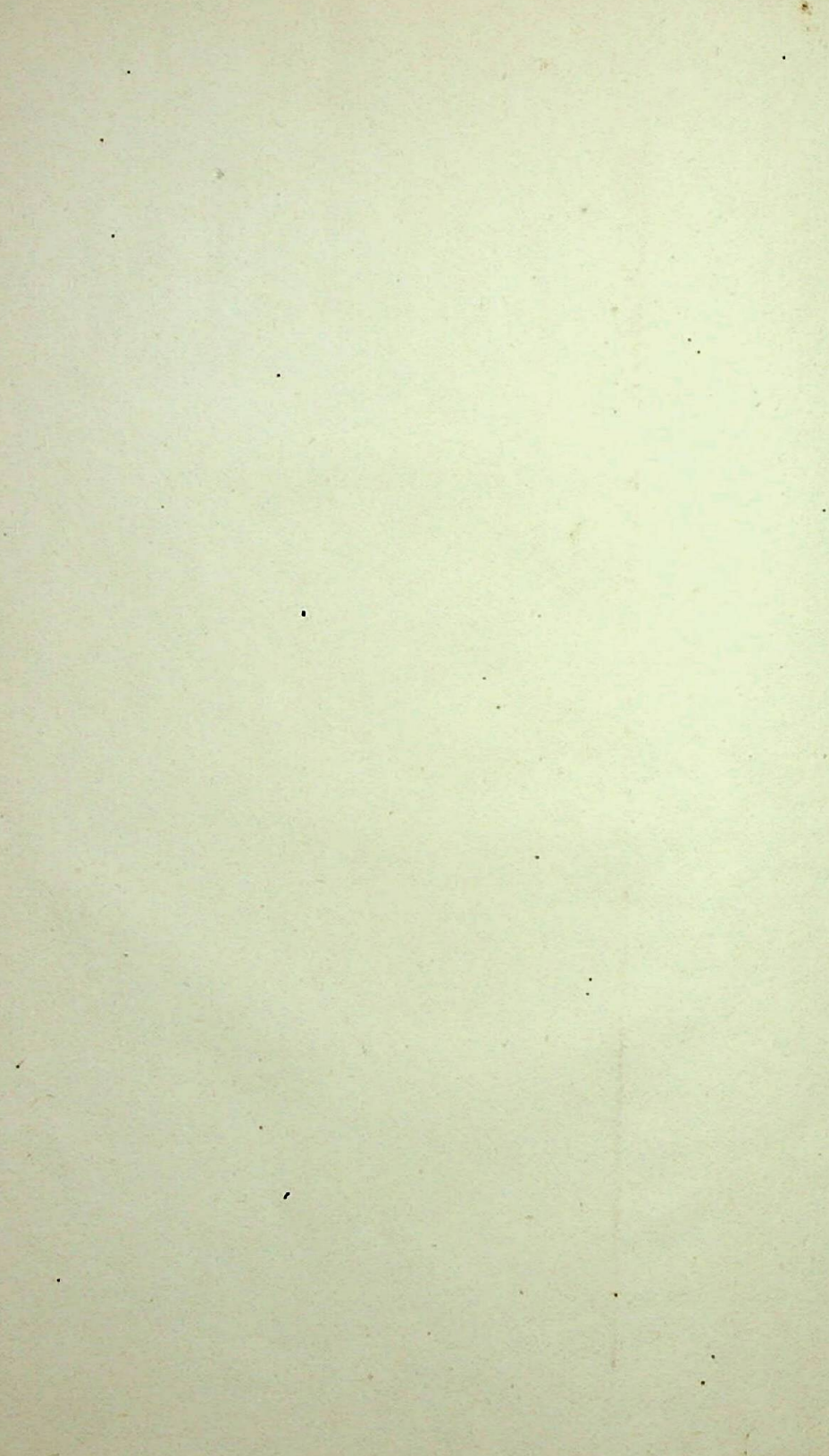
दाम्पत्य-सुख
(Astrology and Marriage)

ज्योतिष के झरोखे से

दाम्पत्य-सुख
(Astrology and Marriage)

ज्योतिष के झरोखे से

लेखक

डॉ० शुकदेव चतुर्वेदी

एम० ए०, पी-एच, डी०

प्रश्नमार्ग, मूक प्रश्न विचार, भुवनदीपक
लघुपाराशरी-विज्ञानभाष्य, नष्टजातकम्
प्रश्नज्ञान, दैवज्ञवल्लभा (वराहमिहिरकृत)
आदि ज्योतिष ग्रन्थों के व्याख्याकार

रंजन पब्लिकेशन्स

१६, अंसारी रोड, दरियागंज
नई दिल्ली-११०००२

प्रकाशक :
रंजन पब्लिकेशन्स
१६, अन्सारी रोड, दरियागंज,
नई दिल्ली-११०००२

फोन : २७८८३५

प्रथम संस्करण : १९८२

मूल्य : ४०.०० रुपये

मुद्रक :
मित्तल प्रिण्टर्स
दिल्ली-११००३२

दो शब्द

ज्योतिष शास्त्र का विषय सूक्ष्म और गहन है, इसका प्रयोजन भविष्य की घटनाओं का परिचय करना ही नहीं अपितु परिचय देकर लाभ कराना भी है। जीवन में हम अनेक लोगों के सम्पर्क में आते हैं। माता पिता के पश्चात व्यक्ति का निकटतम सम्बन्ध पत्नी के साथ रहता है, इस सम्बन्ध का प्रभाव केवल मनुष्य के जीवन तक ही नहीं अपितु उसके वंश की आगामी कई पीढ़ियों तक चलता है, क्योंकि सन्तान परम्परा में पूर्वजों के गुण-दोष किसी न किसी रूप में विद्यमान रहते हैं।

दाम्पत्य जीवन सुखमय रहेगा या दुःखमय, और इसे कैसे सुखमय बनाया जा सकता है, यह प्रश्न एक गम्भीर चुनौती के रूप में भारतीय जन मानस को आन्दोलित करता रहा है। ज्योतिष शास्त्र के मनीषी आचार्यों ने प्राचीनकाल में ही इस प्रश्न का भली भाँति विचार किया था और उन्होंने सुखमय दाम्पत्य जीवन के लिए उपयुक्त वर-वधू का चुनाव, उसके गुण दोषों का विचार, उसकी प्रकृति एवं अभिरुचियों में समानता की पहिचान तथा उनके आपसी पूरकत्त्व भाव का पृथक-पृथक रूप से गम्भीरतापूर्वक विचार कर उन सिद्धांतों एवं नियमों का प्रतिपादन किया जिसके द्वारा न केवल दाम्पत्य सम्बन्धों का ही अपितु दाम्पत्य जीवन के समस्त पहलुओं को सरलतापूर्वक जानकर समाधान किया जा सके।

आचार्यों द्वारा प्रतिपादित उक्त सिद्धान्त का विवेचन ज्योतिष शास्त्र के प्रसिद्ध जातक एवं प्रश्न ग्रंथों में किया गया है, किन्तु ये सभी ग्रंथ संस्कृत भाषा में लिखे होने से जन-साधारण की पहुँच से काफी दूर हैं, हिन्दी के पढ़े-लिखे एवं जिज्ञासु पाठकों की उक्त कठिनाई को ध्यान में रखकर मैं इस ओर कुछ लिखने के लिए प्रवृत्त हुआ तथा आज यह ग्रंथ अपने विज्ञ पाठकों के हाथ में सौंपते हुए अपार हर्ष है। विश्वास है कि यह जीवन में उत्पन्न होने वाली अधिकांश समस्याओं का सहेतुक विवेचन करने में आपकी अधिकतम सहायता करेगा।

विवाह सम्बन्धों में मंगल ग्रह का लग्न, चतुर्थ, सप्तम, अष्टम, दशम और द्वादश स्थानों में होना हानिकारक है, इस ग्रह के उक्त स्थानों में होने के कारण कई शिक्षित, सुन्दर, कुलीन, एवं समृद्ध युवकों के विवाह नहीं होते और कितनी

ही सर्वगुण सम्पन्न कन्यायें अविवाहित रह जाती हैं। इस ग्रंथ में मंगल के इस प्रभाव को भली भाँति दरशाया है।

इस ग्रंथ के लेखन की प्रेरणा देने तथा समय-समय पर उत्पन्न शास्त्रीय गुत्थियों को सुलझाने में अपना कृपा पूर्ण योगदान देने के लिए मैं श्रद्धेय गुरुवर पं० श्री संकटा प्रसादजी उपाध्याय, निवर्तमान प्राचार्य श्री माथुर चतुर्वेद विद्यालय का हृदय से आभारी हूँ। उनकी उदारता एवं शिष्य वत्सलता के प्रति कृतज्ञता प्रकट करने के लिये उपयुक्त शब्दों का अभाव-सा प्रतीत होता है। समय-समय पर प्रोत्साहन एवं सुस्पष्ट शास्त्र चर्चा करने के लिए सर्व श्री पं० राजाराम शास्त्री, प्रो० महेन्द्र दवे आदि सज्जनों के प्रति धन्यवाद प्रकट करता हूँ जिनके सहयोग के बिना यह कार्य पूरा न होता।

गंगा दशहरा, सं २०३९ —लेखक

ॐ शमिति

विषय-सूची

पुस्तक नौ अध्यायों में विभाजित

अध्याय प्रथमं

विषय-प्रवेश

ज्योतिष की विशेषता, दाम्पत्य सम्बन्ध एवं ज्योतिष, जन्म कुण्डली का ठीक न होना, नकली कुण्डली बनवा लेना, नाम से विधि मिलवा लेना, जिस किसी से भी निर्णय करा लेना।

विषय प्रवेश

मनुष्य का स्वभाव ही कुछ ऐसा है कि वह क्यों ? कैसे ? क्या हो रहा है ? और क्या होगा ? यह जानने के लिए सदैव लालायित एवं प्रयत्नशील रहता है। इसका कारण यह कि प्राणी-जगत् में मनुष्य ही एक ऐसा प्राणी है, जो अपनी बुद्धि का प्रयोग एवं उपयोग करता रहता है। वह अपने बौद्धिक्र क्रियाकलापों के परिणामों या अनुभवों को अपने पास संचित रखता है। तथा समय-समय पर इन अनुभवों से स्वयं भी लाभ उठाता है और अपनी सन्तान या भावी पीढ़ी को भी लाभ उठाने की प्रेरणा देता है। अन्य प्राणी बुद्धि का उतना प्रयोग न करके स्वाभाविक प्रकृति के संकेत पर चलते हैं। वे बुद्धि की अपेक्षा प्रकृति पर निर्भर रहते हैं। अतः न तो उनमें अनुभवों को संचित करने की प्रवृत्ति पायी जाती है और न ही अनुभवों से लाभ उठाने की रुचि ही। परिणामतः उनमें

उन्नति की भावना का अभाव सा दिखलाई देता है। इसके विपरीत मनुष्य अपने अनुभव एवं ज्ञानकोश का न केवल स्वयं लाभ उठाता है, अपितु उसे लिपिवद्ध कर पूरे मानव समाज को लाभ पहुंचाने का भी प्रयत्न करता है ?

क्यों ? कैसे ? क्या हो रहा है ? और क्या होगा—मानव मात्र के इस सहज कौतूहल के पीछे उसकी भूत, वर्तमान एवं भविष्यत् की जानकारी की भावना अन्तर्निहित है। किन्तु वास्तविकता यह है कि सामान्य मनुष्य न तो समग्र रूप से वर्तमान को ही जानता है और न ही भविष्यत् को। हाँ भूत के बारे में उसे वहुत कुछ जानकारी अवश्य रहती है। किन्तु वह भी इतनी धुँधली या धूमिल होती है कि उसके आधार पर यथार्थ को पहिचाना या निर्णीत नहीं किया जा सकता। इसका कारण है ज्ञानेन्द्रियों की शक्ति का सीमित होना तथा तथ्य के प्रति रुझान न होना।

मनुष्य को ज्ञान या अनुभव ज्ञानेन्द्रियों के माध्यम से मिलता है; जो कि यथार्थ दृष्टि के अभाव में पूरी शक्ति से काम नहीं करती। इसीलिए व्यक्ति वर्तमान की समग्र जानकारी नहीं कर पाता। वह अति दूरवर्ती, अति समीपवर्ती, अति सूक्ष्म, अति विस्तीर्ण एवं अति समान वस्तुओं या वातों के वारे में पूरा ज्ञान नहीं रखता। दिल्ली में बैठे किसी व्यक्ति को यह जानकारी नहीं रहती कि उसका कोई मित्र या शत्रु इस समय वम्बई में उसके लाभ या नुकसान के लिए क्या कर रहा है। एक साथ रहने वाले पति-पत्नी, पिता-पुत्र, दो मित्र या दो प्रेमी भी निर्णयात्मक रूप में एक दूसरे के वारे में जान नहीं पाते। सूक्ष्म होने के कारण हमें परमाणु तथा विस्तीर्ण होने के कारण आकाश की सहसा प्रतीति नहीं होती, जो सदैव हमारे चारों ओर विद्यमान है। इसके अलावा वर्तमान को न जानने के कारण हैं—व्यवधान होना, संदेह या भ्रान्ति होना एवं मनोयोग का न होना। यह स्थिति है, हमारे वर्तमान विषयक-ज्ञान की। तब भविष्य के बारे में क्या कल्पना की जा सकती है ? जब व्यक्ति वर्तमान को ही समग्र रूप से नहीं जानता तो भविष्यत् के गर्भ की बातों

को कैसे जान सकता है ?

आप सब जानते हैं कि प्रतिवर्ष देश का बजट तैयार होता है। वित्तमन्त्री जनता के कल्याण की योजनाओं को मूर्तरूप देने के लिए कराधान की व्यवस्था करता है। बजट में कुछ नई छूट एवं नये टैक्सों का प्रावधान होता है। किन्तु जब तक यह बजट संसद में रखा या प्रचारित नहीं किया जाता, देश की समस्त जनता में इसके बारे में एक कौतूहल या त्रास दिखलायी देता है। आप चाहे किसी भी धन्धे या वर्ग से सम्वद्ध क्यों न हों, आप इस कौतूहल या त्रास से स्वयं को मुक्त नहीं कर पाते। देश का हर आम और खास व्यक्ति यह जानना चाहता है कि नये बजट का उस पर क्या प्रभाव पड़ेगा ? वह नये टैक्सों के भार से दब जायेगा या किसी योजना से उसका भाग्य चमकेगा ? सामान्य जनता को बजट बनते समय उसके बारे में कोई जानकारी नहीं होती। किन्तु उसकी बजट को जानने की इच्छा में कोई कमी भी दिखलाई नहीं देती। ठीक यही स्थिति उसकी भूत, भविष्य एवं वर्तमान की जानकारी की उत्सुकता में देखी जा सकती है।

विज्ञान एवं अन्य शास्त्र तथ्यान्वेषी होने के कारण तथ्य तक पहुँचने का प्रयास करते हैं। उनकी दौड़ तथ्य तक होती है और तथ्य को जान लेने से हमारा काम चल जाता है। अतः हम तथ्य से आगे जाने का प्रयास नहीं करते। यह ध्यान रखने योग्य बात है कि तथ्य (Fact) एक तात्कालिक सत्य होता है, किन्तु यह सार्वकालिक सत्य नहीं होता। यह मकान, पार्क, नगर, गाँव या राजधानी है। आज पूर्णिमा, अमावस्या, होली, दिवाली या रामनवमी है। वह वकील, डाक्टर, अध्यापक, पत्रकार, कलाकार या नेता है—इन सब को हम तथ्य की श्रेणी में रख सकते हैं। स्थान, काल एवं व्यक्ति उपर्युक्त के अलावा भी कुछ होता या हो सकता है। अतः इसे किसी तथ्य मात्र से बाँध लेना—हमारी एक गलती है। जिसके कारण हम यथार्थ का बोध नहीं कर पाते। परन्तु ज्योतिषशास्त्र तथ्य एवं सत्य दोनों को सामने रखकर निर्णय लेता है। अतः वह भूत भविष्य या वर्तमान के बारे में हमें जानकारी देकर, हमारे कौतूहल को

शान्त करने के साथ-साथ मानव को कल्याण का मार्ग प्रशस्त करता है।

ज्योतिष शास्त्र की विशेषता

ज्योतिषशास्त्र की प्रमुख विशेषता यह है कि मानव सत्यान्वेषण करता है, तथा उस सत्य से उत्पन्न होने वाले तथ्य का निरूपण भी करता है। ज्योतिष शास्त्र की मान्यता है कि तथ्य, सत्य का एक प्रतिफलित परिणाम है। तथ्य में परिवर्तन हो सकता है, किन्तु यह परिवर्तन सत्य के अनुरूप ही होता है।

ग्रहों की कक्षा, गति एवं भगणपूर्ति आदि इसी सत्य के प्रतिरूप हैं। जब कि ग्रहों की स्थिति, मार्गत्व, वक्रत्व, उदय एवं अस्त होना तथ्य की श्रेणी में आते हैं। इन ग्रहों का योगजन्य परिणाम वह सत्य है, जो देश, काल, पात्र के भेद से प्रतिफलित होकर एक तथ्य के रूप में हमारे सामने आता है।

उदाहरण के रूप में सन्ततिबाधा योग को ले लीजिए। यह योग सन्तान के जन्म में अवरोध या विलम्ब उत्पन्न करता है—यह कहना सत्य की श्रेणी में आयेगा। यह योग जननेन्द्रिय में रोग, गर्भपात या शुक्राणुओं की कमी आदि कर सकता है—यह कहना तथ्य की श्रेणी में आता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि ज्योतिष शास्त्र सत्य एवं तथ्य दोनों का एक साथ विचार करने के कारण मानव जीवन के अनेक रहस्यों तथा गुत्थियों को सुलझाने का प्रयास करता है।

अन्य शास्त्रों की तुलना में ज्योतिष शास्त्र के दृष्टिकोण में एक आधारभूत विशेषता यह है कि ज्योतिष समष्टि को अधिक महत्त्व न देकर व्यष्टि को ही अधिक महत्त्व देता है। यह शास्त्र ब्रह्माण्ड, जगत् एवं मानव समाज पर दृष्टिपात कर व्यक्ति पर अपनी दृष्टि केन्द्रित कर लेता है। इसकी दृष्टि में एक काल में केवल एक ही व्यक्ति रहता है, तथा यह हर व्यक्ति के भूत, भविष्य एवं वर्तमान का पृथक्-पृथक् विचार करने का प्रयास करता है। जब-जब भी यह सामूहिक विचार करता है तो उसे गौण ही मानता है, प्रधान नहीं। यही कारण है कि

आचार्यों ने राशिफल या गोचर फल जैसे सामूहिक फलादेश को कभी भी प्रधानता या प्रमुखता नहीं दी। प्रमुखता तो सदैव व्यक्ति की कुण्डली के योगों को मिलती रही है। इस प्रकार प्रत्येक व्यक्ति के जीवन की गतिविधियों का पृथक्-पृथक् विचार करने के कारण ज्योतिष शास्त्र, व्यक्ति, व्यक्तियों के सम्बन्ध तथा उसके परिणामों के बारे में सदैव अधिक प्रामाणिक निष्कर्षों पर पहुँचता रहा है।

दाम्पत्य सम्बन्ध एवं ज्योतिष

दाम्पत्य जीवन सुखमय रहेगा या दुःखमय ? और इसे सुखमय कैसे बनाया जा सकता है ?—इस प्रश्न का शास्त्रीय रीति से समाधान ज्योतिष शास्त्र के मनीषी आचार्यों ने सुदूर प्राचीन काल में कर लिया था। उन्होंने सुखमय दाम्पत्य जीवन के लिए उपयुक्त वर-वधू के चुनाव, उनके गुण-दोषों का विचार, उनकी प्रकृति एवं अभिरुचि में समानता, परस्पर पूरकत्वभाव आदि का विचार करने के लिए शास्त्रीय नियमों का प्रतिपादन किया और फिर इन सबके परिणाम स्वरूप दाम्पत्य-जीवन में घटित होने वाली शुभ या अशुभ घटनाओं का विवेचन किया।

ज्योतिष शास्त्र की मान्यता है कि विवाह से पूर्व वर एवं वधू की भली-भाँति या सावधानी पूर्वक परीक्षा कर लेनी चाहिए। यह परीक्षा उनके गुण एवं दोषों के आधार पर होती है। इस प्रकार गुण एवं दोषों का विचार करने के बाद जो वर-वधू योग्य एवं उपयुक्त लगें उनका मेलापक मिलना चाहिए। क्योंकि अयोग्य या अनुपयुक्त लड़की-लड़कों का विवाह करने से उनका दाम्पत्य जीवन क्लेशमय बन सकता है। वर के प्रमुख रूप से विचारणीय गुण एवं दोष निम्नलिखित होते हैं। उसके गुण हैं—१. अच्छा स्वास्थ्य, २. समुचित शिक्षा, ३. उत्तम चरित्र, ४. अच्छा भाग्य, ५. दीर्घआयु एवं ६. सन्तानोत्पत्ति की क्षमता। उसके दोषों में प्रमुख होते हैं—१. अल्प आयु, २. रोगी होना, ३. नपुंसक, ४. व्यभिचारी, ५. दरिद्री, ६. संन्यासी, ७. सन्तानहीन, ८. विधुर एवं ९. बहुविवाह करने वाला होना। इन गुण-दोषों के आधार पर वर की परीक्षा कर

उसका चुनाव करना चाहिए। इसी प्रकार कन्या के गुण-दोषों के आधार पर उसकी भी परीक्षा की जाती है। उसके गुण होते हैं—१. अच्छा स्वास्थ्य, २. शालीन स्वभाव, ३. अच्छा भाग्य, ४. समुचित शिक्षा, ५. पतिव्रता होना और ६. सन्तान सुख का योग। उसके दोषों में प्रमुख हैं—१. असामयिक मृत्यु, २. रोगिणी होना, ३. व्यभिचारिणी, ४. दरिद्रा, ५. विधवा, ६. वन्ध्या, ७. काल वन्ध्या, ८. मृतवत्सा एवं ९. विषकन्या होना। इन गुण-दोषों के आधार पर कन्या की परीक्षा कर उसका चुनाव करना चाहिए। तात्पर्य यह है कि वर एवं वधू के गुण एवं दोषों का ध्यानपूर्वक विचार करके योग्य एवं सर्वथा उपयुक्त वर-वधू का ही विवाह करना चाहिए।

वर एवं वधू के चुनाव के बाद उनकी प्रकृति, मनोवृत्ति एवं अभिरुचि आदि में समानता का विचार करना आवश्यक होता है। क्योंकि दाम्पत्य सम्बन्धों का अधिकतर दारोमदार इन्हीं पर रहता है। इस समानता का विचार नक्षत्र मेलापक द्वारा किया जाता है। मेलापक में वर्ण, वश्य, तारा, योनि, ग्रहमैत्री, गणकूट, भकूट एवं नाड़ी—इन बातों का विचार कर वर-वधू के स्वभाव एवं रुचि में समानता का निर्धारण किया जाता है। यदि लड़की एवं लड़के के स्वभाव एवं रुचि में समानता हो तो विवाह करना चाहिए, अन्यथा असमानता होने पर उनके दाम्पत्य सम्बन्ध में कटुता आ सकती है।

नक्षत्र मेलापक का विचार करने के बाद पति-पत्नी में परस्पर पूरकता का विचार करने के लिए ग्रह मेलापक का विचार किया जाता है। सुखी दाम्पत्य जीवन के लिए निम्नलिखित पाँच वस्तुओं की आवश्यकता होती है—१. अच्छा स्वास्थ्य, २. भोगोपभोग की सामग्री की उपलब्धि, ३. रतिसुख, ४. अनिष्ट घटनाओं का अभाव एवं ५. आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अच्छी क्रय-शक्ति। इन पाँचों के प्रतिनिधि भाव यथाक्रमेण लग्न, चतुर्थ, सप्तम, अष्टम एवं द्वादश माने गए हैं। यदि इन भावों में शुभ ग्रह हों तो उक्त पाँचों वस्तुओं की प्राप्ति हो जाती है। किन्तु इन स्थानों में शनि, मंगल या अन्य पापग्रह रहने पर इन वस्तुओं

की प्राप्ति न होने के कारण दाम्पत्य जीवन में कुछ न कुछ समस्याएँ एवं कठिनाइयाँ उत्पन्न हो जाती हैं, जो दाम्पत्य सुख में कमी लाती हैं। ग्रह मेलापक के द्वारा वर एवं वधू की कुण्डली में इन पाँच स्थानों में पापग्रहों की स्थिति, उसका प्रभाव तथा इसका परिहार खोजने का प्रयास किया जाता है। उदाहरणार्थ पति की कुण्डली में द्वादश स्थान में पापग्रह हों, जो उसकी कमजोर या असन्तुलित क्रय-शक्ति के द्योतक होते हैं तो इस स्थिति में अच्छी क्रय शक्ति का योग वाली कन्या से उसका विवाह करने की राय दी जाती है। इन पाँच स्थानों में पापग्रह होने से मंगली योग बनता है। इस मंगली योग, उससे उत्पन्न होने वाले दोष तथा दोषों के निराकरण का विचार ग्रह मेलापक का मुख्य विषय है।

इस प्रकार वर-वधू के चुनाव एवं मेलापक के द्वारा उनकी प्रकृति एवं रुचि की समानता तथा परस्पर पूरकता का निश्चय कर लेने के बाद विवाह होने के योगों का विचार करना चाहिए। क्योंकि विवाह होने का योग न होने पर वर-वधू का चुनाव एवं मेलापक विचार आदि सभी कुछ विचार करना बेकार सिद्ध हो सकता है। इस योग का विचार करते समय मुख्यतया निम्नलिखित बातों पर ध्यान देना चाहिए-- १. विवाह में बाधक योग, २. विवाह में विलम्ब कारक योग, ३. विवाह न होने के योग, ४. बाल-विवाह के योग, ५. यथासमय विवाह के योग एवं ६. वृद्धावस्था में विवाह के योग। इन योगों का विचार कर उनके आधार पर विवाह होने के समय का निर्धारण कर लेना चाहिए।

विवाह-काल का निश्चय करके विवाह की संख्या एवं पुनर्विवाह के योगों का भी विचार कर लेना चाहिए। और इस सबके बाद दाम्पत्य सम्बन्धों का विचार करना चाहिए। इस रीति से हम व्यक्ति के दाम्पत्य जीवन में घटने वाली समस्त घटनाओं का पूर्वानुमान कर सकते हैं।

कुछ लोग यह कह सकते हैं कि वर-वधू की कुण्डली मिलवाने तथा ज्योतिषियों के दिखा देने के बाद किये गये विवाह भी असफल हो जाते हैं। अनेक दम्पतियों में वैचारिक मतभेद या वैमनस्य रहता है। कुछ लोग गृह-कलह से परेशान होकर तलाक ले लेते हैं, तथा कुछ अन्य लोग

धनहीन, सन्तानहीन या प्रेमहीन होकर बुझे मन से दाम्पत्य जीवन की गाड़ी को खींचते हैं। आखिर इस सब का कारण क्या हैं ? इस प्रश्न का विस्तार से विचार करने की आवश्यकता है। हमारी राय में इसके निम्नलिखित कारण हैं—

(१) जन्म-कुण्डली का ठीक न होना

अधिकांश कुण्डलियों के ठीक न होने का कारण यह है कि वे अनुमानित समय से वनी होती हैं। कुछ ज्योतिषी लोकल टाइम एवं स्टैण्डर्ड टाइम का अन्तर न जानने के कारण ठीक से संस्कार नहीं कर पाते, तथा कुछ अन्य लोग पंचांग की लग्नसारिणी देखकर कुण्डली खींच देते हैं, जन्म-स्थान के अक्षांश, पलभा आदि का विचार नहीं करते। इस प्रकार गलत कुण्डलियाँ वन जाती हैं, तथा उनसे किया जाने वाला निर्णय भी गलत होता है।

(२) नकली कुण्डली बनवा लेना

कुछ लोग लड़की की कुण्डली में मंगली योग या वैधव्य योग देखकर उसकी नकली कुण्डली बनवा लेते हैं। कई बार लड़के की कुण्डली को देखकर उससे मेल खाती कन्या की नकली कुण्डली बनवा ली जाती है। इन नकली कुण्डलियों से विचार करके कोई भी व्यक्ति यथार्थ स्थिति की जानकारी नहीं कर सकता।

(३) नाम से विधि मिलवा लेना

लड़की-लड़के में से किसी की कुण्डली न होने के कारण प्रायः लोग उनके प्रचलित नाम से मेलापक का विचार करवाते हैं। नाम से मेलापक का विचार करना पूर्णरूपेण अशास्त्रीय है, और वर-वधू के नामों को जानकर उनके दाम्पत्य-जीवन या दाम्पत्य-सम्बन्धों को जानने की कोई भी रीति ज्योतिष शास्त्र के आचार्यों ने नहीं बतलायी।

(४) जिस किसी से भी निर्णय करा लेना

मेलापक एवं दाम्पत्य सम्बन्धों का विचार करना एक उत्तरदायित्व

पूर्ण कार्य है। जिसे आज ५ से १० मिनट में पूरा कर दिया जाता है। आम तौर पर लोग मेलापक सारिणी से वर-वधू के नक्षत्र के आधार पर गुण देख लेते हैं, तथा कुण्डली से मंगली योग और इस प्रकार चुटकी बजाते-बजाते दो व्यक्तियों के भाग्य का फैसला हो जाता है।

मजे की बात यह है कि हमारे देश में ज्योतिष को न जानने वाले ज्योतिषियों की संख्या सर्वाधिक है। इससे भी अधिक आश्चर्य की बात यह है कि हर किसी पण्डित कर्मकाण्डी, कथावाचक, पुजारी, साधु या संन्यासी को ज्योतिषी मानकर लोग उससे मेलापक मिलवाने जाते हैं, और ये लोग भी बातों ही बातों में दो अपरिचित व्यक्तियों के भाग्य एवं दाम्पत्य जीवन का फैसला कर देते हैं। यही कारण है कि इन लोगों से मेलापक मिलवाने के बाद भी वैवाहिक जीवन सुखमय न होने के असंख्य उदाहरण मिलते हैं।

इन सब बातों को ध्यान में रखकर हमने ज्योतिष शास्त्र के आधार पर दाम्पत्य सम्बन्धों का विचार करने की शास्त्रीय रीति का अग्रिम ८ अध्यायों में विस्तार से विवेचन किया है। इस रीति से दाम्पत्य जीवन में घटित होने वाले सुख या दुःख का आसानी से पूर्वानुमान किया जा सकता है।

अध्याय द्वितीय

दम्पति-विचार

विवाह के लिए उपयुक्त वर का चुनाव, वरणीय लड़के के गुण एवं दोष; वर की कुण्डली के प्रमुख गुण—(क) अच्छा स्वास्थ्य, (ख) अच्छी शिक्षा, (ग) उत्तम चरित्र, (घ) अच्छा भाग्य, (ङ) दीर्घायु योग एवं (च) सन्तान योग।

जो विवाहित युगल पतिपत्नी के रूप में रह रहे हों दम्पति कहलाते हैं। इनके आपसी सम्बन्ध तथा दाम्पत्य जीवन में घटनेवाली सभी शुभ या अशुभ घटनाओं का पूर्वानुमान ज्योतिष की सहायता से किया जा सकता है। दाम्पत्य जीवन सुखमय रहेगा या दुःखमय? इस प्रश्न पर शास्त्रीय रीति से विचार सुदूरतम प्राचीनकाल में ज्योतिष शास्त्र के आचार्यों ने किया था। उन्होंने सुखमय दाम्पत्य जीवन के लिए उपयुक्त वर एवं वधू के चुनाव पर अधिक जोर दिया था। उनका कहना है कि "जो व्यक्ति वर की समुचित परीक्षा किये बिना अपात्र, अयोग्य या गुणहीन वर को अपनी कन्या दे देता है, उसका कुल कन्या के शोक एवं सन्ताप से नष्ट हो जाता है।[1] इसलिए विवाह करने से पूर्व वर एवं वधू की

---

१. देखिये बादरायण संहिता।

भली भाँति परीक्षा कर उपयुक्त वर एवं वधू का चुनाव करना चाहिए।

विवाह के लिए उपयुक्त वर का चुनाव

विवाह से पूर्व वर की अच्छी तरह परीक्षा कर उसके गुण एवं दोषों का विचार कर उसके साथ कन्या का विवाह करने की परम्परा हमारे देश में प्राचीन काल से चली आ रही है। रामायण, महाभारत एवं अन्य प्राचीन ग्रन्थों में वर की परीक्षा के लिए स्वयम्वर के समय किये जाने वाले मत्स्यवेध, चक्रवेध एवं धनुष भङ्ग वर्णन इस सन्दर्भ में एक प्रामाणिक साक्ष्य हैं।

हिन्दू धर्मशास्त्र में भी वर एवं वधू दोनों की परीक्षा पर जोर दिया गया है, तथा वर एवं वधू दोनों के गुण दोषों का विस्तार से विवेचन किया गया है। वसिष्ठ, याज्ञवल्क्य एवं मनु आदि महर्षियों ने अपरीक्षित एवं अयोग्य वर या वधू के विवाह का निषेध किया है। यदि प्रमाद या भूल से अयोग्य या अनुपयुक्त लड़की या लड़के का विवाह हो जाय तो ऐसी स्थिति में पुनर्विवाह करने तक की स्वीकृति दी गयी है।[1]

कुछ लोगों को यह भ्रान्ति है कि हिन्दू धर्मशास्त्र स्त्री के पुनर्विवाह का विरोधी है। स्त्री का विवाह योग्य या अयोग्य किसी भी प्रकार के पुरुष के साथ कर दिया जाय, उसे आगे चलकर तोड़ा नहीं जा सकता। स्त्री का एक बार जिस व्यक्ति के साथ विवाह कर दिया गया वह उसे छोड़कर किसी अन्य के साथ पुनर्विवाह नहीं कर सकती। किन्तु हमारे विचार में हिन्दू धर्मशास्त्र ऐसी संकीर्ण धारणाओं का पक्षपाती नहीं है। महर्षि याज्ञवल्क्य ने कुछ उन परिस्थितियों में स्त्री को पुनर्विवाह का अधिकार दिया है जिन परिस्थितियों में वह चाहने या पूरा प्रयास करने पर भी दाम्पत्य सुख प्राप्त नहीं कर सकती। उनका कहना है कि निम्न-लिखित ५ परिस्थितियों में विवाहिता स्त्री अपना पुनर्विवाह कर सकती है—१. विवाह के बाद पति विदेश चला जाय और उसका कोई पता न

---

१. विस्तृत जानकारी के लिए देखिये—(क) याज्ञवल्क्य स्मृति (ख) मनुस्मृति

चले या वह १२ वर्ष तक लौट के घर न आये। २. विवाह के बाद पति संन्यासी हो जाय। ३. विवाह के बाद और द्विरागमन से पूर्व पति की मृत्यु हो जाय। ४. पति नपुंसक हो या ५. पति दुराचारी हो। यथा—

नष्टे मृते प्रव्रजिते क्लीबे च पतिते पतौ।
पञ्चस्वापत्सु नारीणां पतिरन्यो विधीयते।।

महर्षि याज्ञवल्क्य के इस कथन में विचार करने के लिए पर्याप्त सामग्री विद्यमान है। धर्मशास्त्र का प्रणेता एवं युगद्रष्टा महर्षि स्पष्ट शब्दों में यह बतला रहा है कि यदि किसी लड़की का विवाह नपुंसक या दुराचारी (पतित) पुरुष के साथ हो जाय तो वह अपने इस पति को छोड़कर पुनर्विवाह कर सकती है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि अयोग्य या अनुपयुक्त पुरुष के साथ विवाह करना सर्वथा निषिद्ध माना गया है। कारण स्पष्ट है कि अयोग्य या अनुपयुक्त पुरुष के साथ विवाह करने से अच्छे दाम्पत्य सम्बन्ध या सुखी दाम्पत्य जीवन की कल्पना नहीं की जा सकती, अस्तु।

वरणीय लड़के के गुण एवं दोष

विवाह से पहले वर की अच्छी तरह परीक्षा—अर्थात् उसके गुण दोषों की पूरी-पूरी जानकारी कर लेना आवश्यक माना गया है। कोई भी पिता वरणीय लड़के के गुणों से प्रभावित हुए बिना या उसे अपनी कन्या के उपयुक्त समझे बिना, उसके साथ अपनी कन्या का विवाह नहीं करता। हमारे देश के बगैर पढ़े-लिखे ग्रामीण भी वर के कुछ गुण एवं दोष मानते हैं। आम तौर पर वर के ९ गुण एवं १० दोष माने जाते हैं। उसके गुण हैं—१. अच्छा कुल, २. अच्छा स्वभाव, ३. अच्छा स्वास्थ्य, ४. अच्छी शिक्षा, ५. कन्या के अनुरूप अवस्था, ६. अच्छा चरित्र, ७. अच्छी सम्पत्ति, ८. गृहस्थी चलाने योग्य आजीविका तथा ९. सिर पर किसी वृद्ध या गण्यमान्य की छाया। तथा उसके दोष माने गये हैं— १. अति निकट या अतिदूर रहने वाला, २. अति धनाढ्य या अति दरिद्री, ३. मूर्ख या अशिक्षित, ४. आजीविका रहित, ५. नपुंसक, ६. रोगी,

७. अपंग, ८. मुमुक्षु, ९. जाति से बहिष्कृत एवं १०. कन्या की आयु से तीन गुनी आयुवाला।

ज्योतिष शास्त्र के मनीषी आचार्यों ने मेलापक मिलाने से पूर्व वरणीय लड़के के गुण दोषों का विस्तार पूर्वक विचार किया है। हमारे आचार्यों ने उन्हीं विषयों को अपने विचार की परिधि में लिया है, जिनका विचार एवं निर्णय या तो ज्योतिष की सहायता के बिना हो नहीं सकता अथवा जिनका सामान्यतया निर्णय करते समय हमारे मन में सन्देह बना रहता है। यही कारण है कि वरणीय लड़के के गुण एवं दोष का विवेचन करते समय हम ज्योतिष के आचार्यों के दृष्टिकोण को बड़ा ही सन्तुलित पाते हैं। ज्योतिष शास्त्र की मान्यता के अनुसार वर की कुण्डली में निम्नलिखित गुण-दोषों का विचार योगों के आधार पर किया जाता है। वर के प्रमुख गुण होते हैं—१. शरीर सुख या अच्छा स्वास्थ्य, २. अच्छी शिक्षा, ३. उत्तम चरित्र, ४. दीर्घायु, ५. अच्छा भाग्य एवं ६. सन्तान योग। उसके दोषों में प्रमुख हैं—१. अल्पायु, २. रोगी, ३. नपुंसक, ४. चरित्रहीन या व्यभिचारी, ५. दरिद्री, ६. भिक्षु या संन्यासी ७. पुत्रहीन, ८. विधुर एवं ९. बहु विवाह करने वाला।

हमारे आचार्यों ने वर की कुण्डली की ग्रहस्थिति एवं ग्रह योगों के आधार पर वर के इन गुण दोषों का विचार कर उसकी योग्यता एवं उपयुक्तता की परीक्षा की है।

अन्य शास्त्रों की तुलना में ज्योतिष शास्त्र के दृष्टिकोण में एक आधारभूत विशेषता यह है कि ज्योतिष समष्टि को अधिक महत्त्व न देकर व्यष्टि को अधिक महत्त्व देता है। यह शास्त्र समस्त ब्रह्माण्ड, जगत् या मानव समाज को ध्यान में न रखकर व्यक्ति पर ही अपनी दृष्टि केन्द्रित रखता है। उसकी दृष्टि में एक काल में केवल एक व्यक्ति रहता है, और वह हर व्यक्ति के भूत, भविष्य एवं वर्तमान का अलग-अलग विचार करने का प्रयास करता है। जहाँ भी उसने सामूहिक रूप में विचार किया है, उसे गौण ही माना है; प्रधान नहीं। ज्योतिष का प्रत्येक विद्यार्थी जानता है कि राशिफल या गोचर फल जैसे सामूहिक फलादेश

को आचार्यों ने कभी भी प्रधानता या प्रमुखता नहीं दी। प्रमुखता तो सदैव व्यक्ति की कुण्डली के योगों को ही मिली है। इस प्रकार प्रत्येक व्यक्ति का पृथक्-पृथक् विचार करने के कारण ज्योतिषशास्त्र व्यक्ति, उसके सम्बन्ध तथा सम्बन्धों के परिणाम के बारे में सदैव अधिक प्रामाणिक निष्कर्षों पर पहुँचता रहा है। यही कारण है कि लोगों को अपने दैनिक जीवन में जहाँ कहीं भी कठिनाई आती है. या जब वे किसी संशय या सन्देह के कारण निर्णय नहीं कर पाते तो वे किसी ज्योतिषी के पास परामर्श हेतु जाते हैं। तब ज्योतिषी उनकी समस्याओं का यथोचित समाधान करता है।

वर की कुण्डली में प्रमुख गुण

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, वर की कुण्डली में विचारणीय ६ गुण होते हैं—१. शरीर सुख या अच्छा स्वास्थ्य, २. समुचित शिक्षा, ३. दीर्घ आयु, ४. उत्तम चरित्र, ५. अच्छा भाग्य एवं ६. सन्तान योग। इस अध्याय में हम वर की जन्मकुण्डली में ग्रहस्थिति एवं ग्रहयोगों के आधार पर उसके गुणों का विस्तार पूर्वक विवेचन करेंगे।

शरीर सुख या अच्छा स्वास्थ्य

अच्छे स्वास्थ्य के महत्त्व से आप सभी परिचित हैं। यदि व्यक्ति का स्वास्थ्य अच्छा न हो तो वह अपने जीवन में क्या कर सकता है ? अस्वस्थ व्यक्ति प्रत्येक कार्य के लिए अक्षम होता है। अत: विवाह से पूर्व वर के स्वास्थ्य का विचार करना नितान्त आवश्यक होता है। क्योंकि दाम्पत्य सुख एवं दाम्पत्य जीवन के समस्त दायित्वों का निर्वाह करने के लिए अच्छा स्वास्थ्य होना आवश्यक है।

ज्योतिष शास्त्र में जन्मलग्न एवं उसका स्वामी ग्रह ये दोनों व्यक्ति के स्वास्थ्य का प्रतिनिधित्व करते हैं। अत: वर की कुण्डली में लग्न एवं लग्नेश की स्थिति, अन्य ग्रहों के साथ युति एवं इन पर शुभ या पाप ग्रहों की दृष्टि पर विशेष ध्यान देना चाहिए। स्वास्थ्य का विचार करने की रीति

यह है—यदि लग्न में लग्नेश या शुभ ग्रह हों अथवा लग्न पर लग्नेश या शुभ ग्रहों की दृष्टि हो किन्तु दोनों पापग्रहों से दृष्ट-युत न हों तो स्वास्थ्य अच्छा रहता है। यदि लग्नेश त्रिक स्थान में या त्रिक स्थानों के स्वामी लग्न में हों अथवा त्रिक स्थानों में पापग्रह हों तो भी स्वास्थ्य अच्छा नहीं रहता। लग्नेश केन्द्र या त्रिकोण में शुभ ग्रहों से युत या दृष्ट हो तथा वह स्वराशि मित्र राशि या उच्च राशि में हो तो स्वास्थ्य अच्छा रहता है। यदि लग्नेश शत्रुराशि, नीचराशि में हो अथवा पापाक्रान्त, पापयुक्त, पापदृष्ट हो अथवा अस्तंगत एवं निर्बल हो तो स्वास्थ्य अच्छा नहीं होता। इस प्रकार हम व्यक्ति के स्वास्थ्य का विचार कर सकते हैं।

उक्त नियमों के अनुसार उत्तम स्वास्थ्य के योग बनते हैं। पाठकों की जानकारी एवं सुविधा के लिए उन योगों को लिखा जा रहा है, जिससे कि किसी के स्वास्थ्य का विचार आसानी से किया जा सके।

उत्तम स्वास्थ्य के योग

जिस व्यक्ति की कुण्डली में निम्नलिखित योगों में से कोई एक योग हो तथा रोग का योग[1] न हो उसका स्वास्थ्य अच्छा रहता है। उत्तम स्वास्थ्य के योग इस प्रकार हैं—

(क) यदि लग्नेश अपने नवांश में हो तथा वह शुभ ग्रहों के साथ हो या उस पर शुभग्रहों की दृष्टि हो तो व्यक्ति का स्वास्थ्य अच्छा रहता है।[2]

(ख) लग्न में लग्नेश स्थित हो तथा उस पर शुभग्रहों की दृष्टि हो, किन्तु लग्न एवं लग्नेश दोनों पाप प्रभाव से मुक्त हों तो मनुष्य का स्वास्थ्य अच्छा रहता है।[3]

(ग) लग्नेश केन्द्र या त्रिकोण स्थान में हो अथवा वह उच्चराशि में

---

१. रोग के योगों का विचार अध्याय ३ में किया गया है।

२-३. जातकतत्त्व अध्याय ३, सूत्र ६-१०

हो तो इस योग में उत्पन्न व्यक्ति का स्वास्थ्य अच्छा रहता है।[1]

(घ) लग्नेश स्वराशि, मित्रराशि या उच्चराशि में हो अर्थात् बलवान् हो तथा लग्न पर शुभग्रहों का प्रभाव हो तो स्वास्थ्य अच्छा रहता है।[2]

(ङ) यदि लग्नेश केन्द्र या त्रिकोण स्थान में शुभग्रहों से युक्त या दृष्ट हो तथा लग्न में शुभग्रह स्थित हो तो व्यक्ति का स्वास्थ्य अच्छा रहता है।[3]

उदाहरण

स्वास्थ्य-विचार के प्रसंग में हम स्वर्गीय पं० मोतीलाल नेहरू की
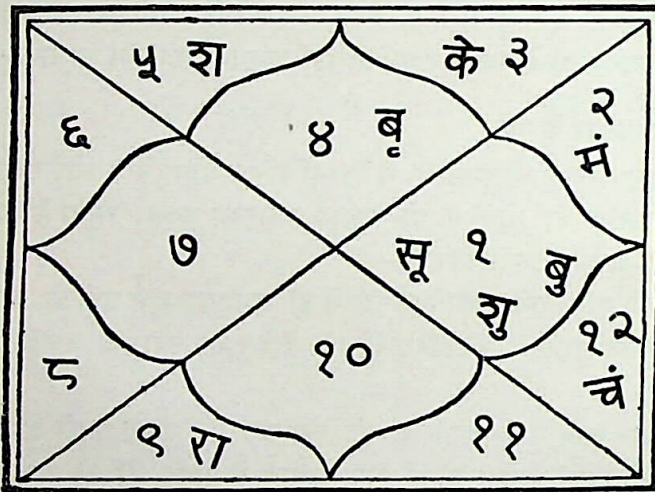
१-२. दैवज्ञाभरण प्र० ६, श्लो० ५१-५२

लग्नेश्वरेणापि युते च सौम्ये सौम्येऽथवा पश्यति लग्नभावम्।
केन्द्रत्रिकोणोच्चगते तदीशे शरीरसौख्यं प्रवदन्ति जातम्॥
तनुस्थानाधिपे स्वोच्चे मित्रर्क्षे स्वगृहे यदि।
देहसौख्यमवाप्नोति लग्नं सौम्यैर्निरीक्षते॥

३. भावदीपिका श्लो० १३

कुण्डली को विचारार्थ ले सकते हैं। इनका स्वास्थ्य आजीवन अच्छा रहा, यह सर्वविदित है। इनकी कुण्डली (पृ० १६) इस प्रकार है—

इस कुण्डली में लग्नेश चन्द्रमा नवम (त्रिकोण) स्थान में स्थित है, उस पर गुरु की पूर्ण दृष्टि है तथा लग्न में गुरु बैठा है। इस प्रकार यहाँ पूर्वोक्त योग सं० ङ पूर्णरूपेण घटित हो रहा है। इस योग के प्रभाव वश ही स्व० श्री नेहरू का स्वास्थ्य प्रायः पूरे जीवन भर अच्छा रहा।

(२) समुचित शिक्षा

विवाह के लिए वर का चुनाव करते समय स्वास्थ्य के बाद उसकी शिक्षा पर ध्यान दिया जाता है। आज के युग में शिक्षा का महत्त्व और भी बढ़ गया है। अशिक्षित या कम पढ़े-लिखे लोगों को आज कदम-कदम पर कठिनाई का सामना करना पड़ता है तथा उन्हें अधिकांश कार्यों में पढ़े-लिखे लोगों का सहारा लेना पड़ता है। शिक्षा के महत्त्व का दूसरा कारण है, उसका आजीविका के साथ जुड़ा होना।

ज्योतिष शास्त्र में विषयगत या शास्त्रीय शिक्षा का विचार पंचम भाव से और व्यावसायिक शिक्षा का विचार दशम भाव से होता है। शिक्षा का कारक बुध माना गया है। अतः किसी व्यक्ति की शिक्षा, योग्यता या बौद्धिक विकास का विचार करते समय हमें पंचम भाव, पंचमेश, दशम भाव, दशमेश एवं बुध—इन पाँचों पर ध्यान देना चाहिए। ये पाँचों बलवान् हों, इन पर शुभ प्रभाव हो, पाप प्रभाव से मुक्त हों तथा पंचमेश, दशमेश एवं बुध शुभ स्थानों में बैठे हों और इनका शुभ ग्रहों से योग हो तो शिक्षा का योग अच्छा होता है।

जिस व्यक्ति की कुण्डली में निम्नलिखित योगों में कोई एक योग हो वह बुद्धिमान् होता है तथा उसकी शिक्षा अच्छी होती है—

(क) पंचमेश शुभ स्थान में शुभ ग्रह की राशि में शुभ ग्रहों से दृष्ट या

युत हो तो व्यक्ति बुद्धिमान् एवं सुशिक्षित होता है।[1]

(ख) पंचम स्थान में बुध हो, पंचमेश बलवान् हो या वह केन्द्र में बैठा हो तो मनुष्य बुद्धिमान् एवं शिक्षित होता है।[2]

(ग) पंचमेश अपनी उच्चराशि में हो या दो शुभ ग्रहों के बीच में हो तो मनुष्य बुद्धिमान् एवं शिक्षित होता है।[3]

(घ) केन्द्र या त्रिकोण में बलवान् गुरु होने पर भी व्यक्ति विद्वान् होता है।[4]

(ङ) पंचमेश एवं बुध पर शुभ ग्रहों की दृष्टि हो तथा पंचम स्थान में शुभ ग्रह हों तो व्यक्ति मेधावी एवं सुशिक्षित होता है।[5]

(च) बुध बलवान् हो, पंचमेश पर शुभ ग्रहों की दृष्टि हो या वह गुरु शुक्र के साथ हो तो व्यक्ति सुशिक्षित होता है।[6]

(छ) पंचमेश एवं दशमेश दोनों केन्द्र या त्रिकोण में बलवान् हों, परस्पर देखते हों या साथ-साथ हों तो व्यक्ति उच्चशिक्षा प्राप्त कर अच्छा पद प्राप्त करता है।

(ज) दशम एवं पंचम स्थान पर शुभग्रहों का प्रभाव हो तथा इनके स्वामी त्रिक स्थान में न हों तो व्यक्ति शिक्षा क्षेत्र में अच्छी प्रगति कर प्रभावशाली पद प्राप्त करता है।

(झ) दशम स्थान, दशमेश ये दोनों बलवान् हों तथा इन पर शुभ प्रभाव हो तो व्यक्ति व्यावसायिक शिक्षा में अच्छी सफलता प्राप्त करता है।

१-४. जातक तत्त्व अ० ७, सू० १-५

बुद्धिस्थानाधिपे सौम्ये शुभदृष्टिसमन्विते।
बुद्धिस्थाने शुभयुते तीव्रबुद्धिं विनिर्दिशेत्॥
कारके बलसंयुक्ते सुतेशे शुभवीक्षिते।
गुरुशुक्रयुते दृष्टे तीव्रबुद्धं विनिर्दिशेत्॥

५-६. देवज्ञाभरण प्र० १३, श्लो० २-३

विशेषज्ञ एवं विद्वान् होने के योग

(क) चन्द्रमा, बुध एवं शुक्र—ये तीनों ग्रह कारकांश लग्न या धन स्थान को देखते हों तो व्यक्ति चिकित्सक होता है।[1]

(ख) चन्द्रमा एवं शुक्र की कारकांश लग्न पर दृष्टि हो तो व्यक्ति रसवैद्य या रसायन शास्त्रवेत्ता होता है।[2]

(ग) करकांश से द्वितीय या पंचम स्थान में गुरु हो तो व्यक्ति भाषा-विज्ञान का विद्वान् या वैयाकरण होता है।[3]

(घ) कारकांश लग्न से द्वितीय, तृतीय या पंचम स्थान में गुरु एवं मंगल हो तो व्यक्ति तर्क शास्त्र का विद्वान् होता है।[4]

(ङ) गुरु एवं शुक्र दोनों अपनी उच्च राशि, मूलत्रिकोण राशि या स्वराशि में हों तो व्यक्ति तर्क शास्त्र का विद्वान् होता है।[5]

(च) कारकांश लग्न से द्वितीय, तृतीय या पंचम भाव में गुरु एवं केतु हों तो व्यक्ति गणितज्ञ होता है।

(छ) धन स्थान का स्वामी बुध अपनी उच्चराशि में, गुरु लग्न में तथा शनि अष्टम में हो तो व्यक्ति गणितज्ञ होता है।

(ज) गुरु केन्द्र या त्रिकोण में, शुक्र उच्चराशि में तथा बुध धनेश होकर धन स्थान में बैठा हो तो व्यक्ति गणितज्ञ होता है।

(झ) बुध एवं शुक्र दोनों दूसरे या तीसरे स्थान में हों तो व्यक्ति ज्योतिष शास्त्र का विद्वान् होता है।

(ञ) उच्चराशि का गुरु द्वितीय या दशम स्थान में हो तो व्यक्ति ज्योतिष शास्त्र का विद्वान् होता है।

(ट) केन्द्र या त्रिकोण में बृहस्पति शुभ ग्रहों के साथ हो तथा पंचम स्थान पर पंचमेश की दृष्टि हो तो व्यक्ति दार्शनिक होता है।

(ठ) दशम भाव का स्वामी लग्न या पंचम में हो तथा इसका पंचमेश

१-४. एवं ६. जैमिनी सूत्र अ० १। पाद २

५. जातक तत्त्व अ० ६। सू० ४१

से सम्बन्ध हो तो व्यक्ति यशस्वी कवि होता है।

(ड) बलवान् पंचमेश केन्द्र या त्रिकोण में हो तो व्यक्ति विद्वान् होता है।

(ढ) पंचमेश दशम या लाभ स्थान में हो तो व्यक्ति विद्वान् होता है।

(ण) चन्द्र कुण्डली में लग्नेश एवं पंचमेश एक-दूसरे के स्थानों में हों तथा चन्द्र लग्न पर शुभ ग्रहों की दृष्टि हो तो व्यक्ति प्रख्यात विद्वान् होता है।

(त) द्वितीय बलवान् होकर बुध के साथ हो तथा पंचम स्थान पर पंचमेश एवं शुक्र ग्रह की दृष्टि हो तो व्यक्ति वकील या न्यायाधीश होता है।

उदाहरण

इन योगों के उदाहरणों का विचार करते समय हम भू०पू० राष्ट्रपति डा० राधाकृष्णन् की कुण्डली को विचारार्थ ले सकते हैं।

डा० राधाकृष्णन् की कुण्डली
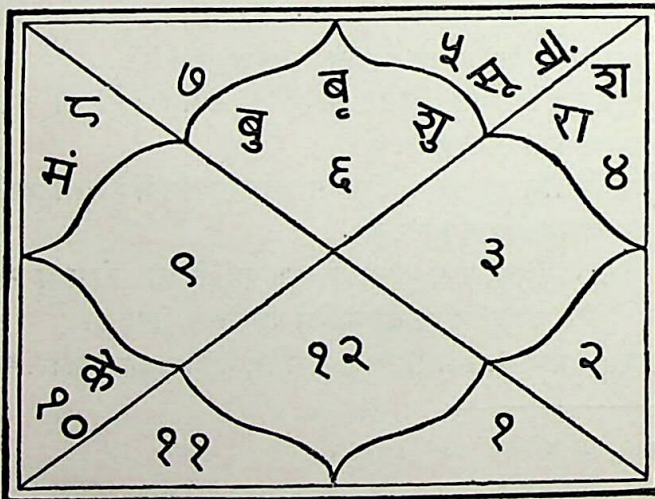
इस कुण्डली में गुरु केन्द्र में दो शुभ ग्रहों के साथ है, पंचम स्थान पर पंचमेश शनि की पूर्ण दृष्टि है। अत: योग संख्या ट के अनुसार दार्शनिक होने का योग बनता है। साथ ही साथ बुध का उच्च राशि में होना, पंचम स्थान पर गुरु की दृष्टि होना तथा केन्द्र त्रिकोण के स्वामियों (बुध, गुरु एवं शुक्र) का एक साथ बैठना, ये विशेष योग भी हैं। डाक्टर राधाकृष्णन् को विश्वविख्यात विद्वान् एवं दर्शन शास्त्र का प्रख्यात शिक्षा शास्त्री बनाने में इन योगों का विशेष प्रभाव रहा है।

(३) दीर्घ-आयु

विवाह के योग्य वर का चुनाव करते समय उसकी आयु का विचार करना परमावश्यक है। जिस व्यक्ति की कुण्डली में अल्पायु-योग हो उसके साथ कन्या का विवाह नहीं करना चाहिए। क्योंकि इस स्थिति में कन्या के विधवा होने की सम्भावना रहती है। दीर्घ-आयु का योग होने पर ही दाम्पत्य-सुख की कल्पना की जा सकती है। इसीलिए दीर्घायु-योग वर की कुण्डली में एक प्रमुख गुण माना गया है।

यदि कन्या की कुण्डली में अल्पायु या मध्यमायु योग हो तो उसका विवाह मध्यमायु योग वाले लड़के से किया जा सकता है। किन्तु दीर्घायु योग वाली कन्या का विवाह मध्यमायु या अल्पायु योग वाले लड़के से नहीं किया जा सकता। हमारे विचार में अल्पायु योग वाली कन्या का विवाह अल्पायु योग वाले वर से मध्यमायु योग वाली कन्या का विवाह मध्यमायु योग वाले वर से तथा दीर्घायु योग वाली कन्या का विवाह दीर्घायु योग वाले वर के साथ करना चाहिए। किन्तु कन्या की आयु से वर आयु कम होने का योग दिखलाई देने पर उनका विवाह नहीं करना चाहिए। क्योंकि ऐसा करने से दाम्पत्य-सुख की हानि ही हो सकती है। अत: विवाह से पहले वर की आयु का विचार कर लेना नितान्त आवश्यक है। यहाँ हम मध्यमायु एवं दीर्घायु के कुछ अनुभूत योगों को लिख रहे हैं। अल्पायु के योगों का विचार अगले अध्याय में किया जायेगा।

मध्यमायु के योग

ज्योतिष शास्त्र में ३२ वर्ष से ७० वर्ष तक की आयु को मध्यमायु कहा गया है। अतः मध्यमायु योग में उत्पन्न व्यक्ति की न्यूनतम आयु ३२ वर्ष तथा अधिकतम आयु ७० वर्ष होती है। इस प्रकार की आयु के सूचक प्रमुख योग इस प्रकार हैं—

(क) लग्नेश निर्बल हो, केन्द्र या त्रिकोण में बृहस्पति हो और षष्ठ, अष्टम या व्यय स्थान में पापग्रह हों तो व्यक्ति की मध्यमायु होती है।[1]

(ख) शुभ ग्रह केन्द्र या त्रिकोण स्थान में हो तथा बलवान् शनि षष्ठ या अष्टम स्थान में हो तो मनुष्य की मध्यमायु होती है।[2]

(ग) लग्नेश भाग्येश के साथ हो, पंचमेश पर गुरु की दृष्टि हो तथा कर्मेश केन्द्र में उच्च राशि में हो तो इस योग में उत्पन्न व्यक्ति की मध्यमायु बतलानी चाहिए।[3]

(घ) पाप ग्रह दशम स्थान और दशमेश पंचमेश के साथ हो तो व्यक्ति की मध्यमायु होती है।[4]

(ङ) शनि चतुर्थ या एकादश स्थान में हो और अष्टमेश केन्द्र में हो तो व्यक्ति की मध्यमायु होती है।[5]

(च) अष्टमेश केन्द्र में मंगल लग्न में तथा बृहस्पति ३, ६ या ११वें स्थान में हो तो व्यक्ति की ४४ वर्ष की आयु होती है।[6]

(छ) राशिपति पापग्रह के साथ अष्टम स्थान में हो, लग्नेश पापग्रहों के साथ षष्ठ स्थान में हो तथा बलवान् हो और शुभ ग्रहों की उस पर दृष्टि न हो तो मनुष्य की आयु ४५ वर्ष की होती है।[7]

बलहीने विलग्नेशे जीवे केन्द्र त्रिकोणगे।
षष्ठाष्टमव्यये पापे मध्यमायुरुदाहृतम्॥

१. जातक परिजात अ० ४। श्लोक ८४

२-६. दैवज्ञाभरण अ० १६। श्लोक २०-२३

७. जन्माधिपे रन्ध्रगते सपापे पापान्विते लग्नपतौ रिपुस्थे।
बलान्विते वा शुभदृग्विमुक्ते पञ्चाब्धिवर्षैर्निधनं प्रयाति॥

(ज) लग्न में चन्द्रमा वर्गोत्तम नवांश में हो, उस पर पापग्रहों की दृष्टि हो तथा शुभ ग्रह निर्बल हों तो व्यक्ति की आयु ४८ वर्ष बतलानी चाहिए।[1]

(झ) लग्नेश अष्टम स्थान की राशि के नवांश में तथा अष्टमेश लग्न की राशि के नवांश में पापग्रह के साथ हो तो व्यक्ति की आयु ५० वर्ष की होती है।[2]

(ञ) लग्न में द्विस्वभाव राशि तथा अष्टम या द्वादश स्थान में चन्द्रमा और शनि हों तो मनुष्य की आयु ५२ वर्ष की होती है।[3]

(ट) अष्टमेश सप्तम स्थान में और चन्द्रमा पापग्रह के साथ षष्ठ या अष्टम स्थान में हों तो ५८ वर्ष की आयु होती है।[4]

(ठ) लग्नेश से पापग्रह ६, ८ एवं १२वें स्थान में हों, किन्तु वे अष्टम भाव में न हों तो ६० वर्ष की आयु होती है।[5]

(ड) होरा एवं जन्मराशि के स्वामी ये दोनों अष्टम में हों, तथा अष्टमेश केन्द्र में हो तो मनुष्य की आयु ६६ वर्ष की होती है।

दीर्घ-आयु के योग

दीर्घ-आयु के योगों में उत्पन्न व्यक्ति की उम्र ७० वर्ष या इससे अधिक होती है। इस प्रकार कुछ प्रमुख योग निम्नलिखित हैं।

---

१. वर्गोत्तमांशगे चन्द्रे लग्नस्थे पापवीक्षिते।
सौम्यैर्बलविहीनैश्च द्वादशाब्दचतुष्टयम्॥

२. लग्नेशो निधनांशस्थे लग्नांशे निधनेश्वरे।
पापयुक्तो तदा जातः पञ्चाशद्वर्षजीवितः॥

३. द्विशरीरोदये जाते मन्दे चन्द्रे व्ययेऽष्टमे वाऽपि।
जातस्तत्र मनुष्यो जीवेद्वर्षाणि द्विपञ्चाशत्॥

४. रन्ध्रेश्वरे कामगते शशांके पापान्विते षण्मृतिगेऽष्टवाणे।

५. लग्नाधीशान्मृत्युषष्ठव्ययस्थाः पापाः सन्तो नैधनं वर्ज्यसंस्थाः।
अस्मिन् योगे जायते यो मनुष्यस्तस्यायुः स्यात् षष्ठिवर्षं प्रदिष्टम्॥

(क) जिसकी जन्म कुण्डली में केन्द्र स्थानों में शुभ ग्रह हों, लग्नेश शुभ ग्रह के साथ हो तथा उस पर गुरु की दृष्टि हो तो व्यक्ति की दीर्घ-आयु होती है ।[१]

(ख) लग्नेश केन्द्र स्थान में गुरु और शुक्र के साथ हो अथवा केन्द्र में स्थित लग्नेश पर गुरु और शुक्र की दृष्टि हो तो व्यक्ति की दीर्घ आयु होती है ।[२]

(ग) उच्च राशि में स्थित ग्रह के साथ शनि या अष्टमेश हों तो व्यक्ति की दीर्घ आयु होती है ।[३]

(घ) पापग्रह तृतीय, षष्ठ एवं एकादश स्थान में हों, शुभ ग्रह केन्द्र-त्रिकोण में हों तथा लग्नेश वलवान् हो तो मनुष्य की पूर्ण आयु होती है ।[४]

(ङ) अष्टमेश जिस भाव में हो उसका स्वामी जिस राशि में हो उस राशि का स्वामी लग्नेश के साथ केन्द्र में हो तो मनुष्य की दीर्घ-आयु होती है ।[५]

(च) लग्न में द्विस्वभाव राशि हो, 'लग्नेश' केन्द्र में हो अथवा वह अपनी उच्च राशि, मूलत्रिकोण राशि या मित्र राशि में हो तो व्यक्ति की आयु लम्बी होती है ।[६]

(छ) द्विस्वभाव लग्न में जन्म हो तथा लग्नेश से केन्द्र में दो या अधिक पाप ग्रह हों तो उसकी दीर्घायु होती है ।[७]

(ज) शुभ ग्रह षष्ठ, सप्तम एवं अष्टम स्थान में हों तथा पाप ग्रह तृतीय षष्ठ एवं एकादश स्थान में हो तो इस योग में उत्पन्न व्यक्ति की दीर्घ आयु होती है ।[८]

उदाहरण

दीर्घायु-योग के उदाहरण के तौर पर भारत के भूतपूर्व प्रधानमन्त्री श्री मोरार जी देसाई की कुण्डली पर विचार किया जा सकता है ।

१-८, जातक पारिजात अ० ४ श्लोक ८५-९६

श्री मोरारजी देसाई की कुण्डली
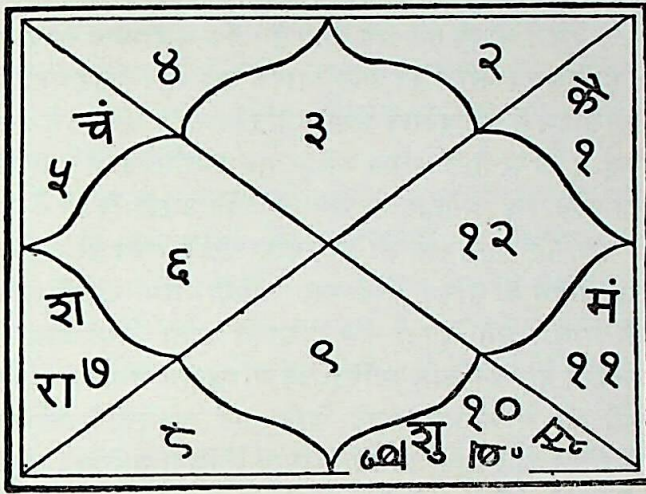
श्री देसाई आज ८५ वर्ष से अधिक की आयु में भी प्रधानमन्त्री जैसे उत्तरदायित्वपूर्ण पद की बागडोर पूरी लगन एवं निष्ठा के साथ संभाले हुए थे। उनकी सक्रियता एवं स्वास्थ्य युवकों के लिए भी अनुकरणीय है। इस बात का ज्योतिष की दृष्टि से विचार किया जाय तो आप देखेंगे कि उनका जन्म मिथुन लग्न में हुआ है, जो एक द्विस्वभाव राशि है। लग्नेश बुध मित्र राशि में दो शुभ ग्रहों (गुरु एवं शुक्र) के साथ बैठा है। इस प्रकार पूर्वोक्त, योग संख्या च उनकी कुण्डली में पूर्णरूपेण घटता है। इसके अलावा उनकी कुण्डली में लग्नेश बुध से केन्द्र में केतु, शनि एवं राहु तीन ग्रह पड़े होने के कारण योग सं० छ भी घटित हो रहा है। इस तरह दो दीर्घायु योगों का होना श्री देसाई की इतनी बड़ी आयु में भी सक्रियता एवं स्वस्थता का रहस्य उद्घाटित कर देता है।

(४) उत्तम चरित्र

चरित्र शब्द बहुत व्यापक अर्थ रखता है। हमारी चर्या, चेष्टा,

इंगित, रुचि एवं अन्य समस्त क्रियाकलाप चरित्र की परिधि में समाहित हो जाते हैं। हम जो कुछ सोचते, विचारते, कहते एवं करते हैं, वे सब बातें हमारे चरित्र का ही एक अंग होती हैं। किन्तु दाम्पत्य सम्बन्धों का विचार करते समय चरित्र का इतने व्यापक अर्थ में विचार नहीं किया जाता। इस सन्दर्भ में चरित्र शब्द पत्नी के प्रति निष्ठा का बोधक है। वास्तविकता यह है कि पत्नी के चरित्र का मूल्यांकन पातिव्रत से तथा पति के चरित्र का मूल्यांकन पत्नीव्रत या पत्नी के प्रति उसकी निष्ठा से करना चाहिए। इसलिए अन्य स्त्री की अभिलाषा रखने वाला या व्यभिचारी व्यक्ति इस सन्दर्भ में चरित्र हीन कहा जायेगा, तथा अपनी पत्नी से प्रेम करने वाला, उसे अपना सर्वस्व मानने वाला तथा अन्य किसी से यौन सम्बन्ध न रखने वाले व्यक्ति को चरित्रवान् समझना चाहिए।

परस्त्री की अभिलाषा रखने वाले एवं व्यभिचारी व्यक्ति की कुण्डली के योगों का विचार अगले अध्याय में किया जायेगा। यहाँ हम पत्नी के निष्ठा के कतिपय योगों का उल्लेख करना चाहते हैं—

(क) जिसकी कुण्डली में सप्तम स्थान में गुरु हो वह अपनी पत्नी के अलावा किसी और से न तो प्रेम करता है और न ही यौन सम्बन्ध रखता है।

(ख) सप्तमेश लग्न में हो तथा शुभ ग्रह सप्तम स्थान में हों तो व्यक्ति एकपत्नी व्रत होता है।

(ग) सप्तमेश दो शुभग्रहों के बीच में हो तथा सप्तम स्थान पर पाप प्रभाव न हो तो व्यक्ति अपनी पत्नी के अलावा और किसी की इच्छा भी नहीं करता।

(घ) चतुर्थ एवं सप्तम स्थान में शुभ ग्रह हों तथा इन दोनों स्थानों पर पाप ग्रहों का प्रभाव न हो तो व्यक्ति धीर एवं उदात्त स्वभाव का होता है। वह अपनी पत्नी को ही सर्वस्व मानता है।

(५) अच्छा भाग्य

कौन ऐसा पिता होगा, जो अपनी कन्या का विवाह भाग्यहीन व्यक्ति

के साथ करना चाहता हो? जीवन में प्रगति एवं सफलता दिलाने में जितना चमत्कार पूर्ण प्रभाव भाग्य दिखलाता है, उतना कोई अन्य नहीं। न केवल दाम्पत्य सुख, अपितु जीवन का प्रत्येक क्षेत्र एवं गतिविधि भाग्य से प्रभावित होती है। अतः विवाह से पूर्व वर के भाग्य का विचार कर लेना चाहिए, तथा जहाँ तक सम्भव हो भाग्यवान् लड़के के साथ ही विवाह करना चाहिए।

ज्योतिष शास्त्र में नवम स्थान एवं इसके स्वामी से भाग्य का विचार किया जाता है। लग्न, चतुर्थ, पंचम एवं दशम भाव इसके सहयोगी माने जाते हैं। इन स्थानों के स्वामियों का परस्पर सम्बन्ध एवं इन पर शुभ ग्रहों का प्रभाव भाग्य योग को बल देता है। फलित के ग्रन्थों में भाग्यवान् योगों की विस्तार पूर्वक चर्चा की गयी है। उनमें से कुछ प्रसिद्ध योग इस प्रकार हैं—

(क) नवमेश केन्द्र, त्रिकोण या लाभ स्थान में उच्चराशि या मित्र राशि में हो तो व्यक्ति भाग्यवान् होता है।[1]

(ख) नवमेश पंचम स्थान में, पंचमेश नवम में तथा दशमेश दशम स्थान में हों तो व्यक्ति भाग्यवान् एवं महाधनी होता है।[2]

(ग) तृतीयेश के साथ स्थित नवमेश पर शुभ ग्रहों की दृष्टि हो तथा धनेश बलवान् हो तो व्यक्ति भाग्यशाली होता है।[3]

(घ) भाग्येश चतुर्थेश के साथ हो तथा शुभ ग्रहों की उस पर दृष्टि हो तो मनुष्य भाग्यशाली होता है और उसे अच्छे वाहनों का सुख मिलता है।[4]

नवामधिपतिः केन्द्रे कोणे लाभे स्थितो यदि।
स्वोच्चे वा मित्रगे वापि तदा सौभाग्यवान्भवेत्॥
धर्माधिपे पञ्चमेशे पञ्चमे धर्मसंयुते।
कर्मेशे कर्मसंयुक्ते भाग्यवान्द्रव्यवान्भवेत्॥
तृतीयाधिपसंयुक्ते धर्मपे सौम्यवीक्षिते।
प्रबले च धनेशे च बहुभाग्ययुतो नरः॥
भाग्याधिपे वाहनेशयुते वा शुभवीक्षिते।
दीर्घभाग्यं वाहनं च लभते नात्र संशयः॥

१-४. दैवज्ञाभरण अ० १७। श्लो० १४

(ङ) भाग्येश लग्न में और लग्नेश भाग्य स्थान में हो तथा राज्येश लाभ स्थान में हो तो व्यक्ति महाभाग्यशाली होता है।[१]

(च) त्रिकोणेश शुक्र हो और उस पर शुभ ग्रह या लग्नेश की दृष्टि हो तो व्यक्ति भाग्यवान् होता है।[२]

(छ) भाग्य स्थान में एक शुभ ग्रह हो, भाग्येश मित्रग्रह के साथ हो और उसको उच्च राशिगत ग्रह देखता हो तो मनुष्य भाग्यशाली होता है।[३]

(ज) भाग्य स्थान पर धनेश एवं शुभग्रह की दृष्टि हो तथा भाग्येश को शुभग्रह देखता हो तो मनुष्य भाग्यशाली होता है।[४]

(झ) भाग्येश जिस स्थान में बैठा हो उसके स्वामी की भाग्येश पर दृष्टि हो अथवा भाग्येश पर लग्नेश तथा कर्मेश की दृष्टि हो तो व्यक्ति भाग्यवान् होता है।[५]

(ञ) भाग्येश एवं कर्मेश दोनों साथ-साथ केन्द्र में हों तथा भाग्य-स्थान में एक शुभ ग्रह हो तो व्यक्ति राजा के समान होता है।[६]

(ट) लाभेश भाग्य स्थान में, भाग्येश लग्न में और लग्नेश लाभ-स्थान में हो तो पुनः पुनः भाग्योदय होता है।[७]

उदाहरण

भाग्य का प्रभाव व्यक्ति के सम्पूर्ण जीवन एवं उपलब्धियों पर पड़ता है—यह सर्वविदित है। भाग्यशाली योग के उदाहरणार्थ हम स्व० पं० मोतीलाल नेहरू की कुण्डली को ले सकते हैं। श्री नेहरू का न केवल एक अच्छे बैरिस्टर के रूप में सम्मान था अपितु उनका प्रभाव तत्कालीन राजाओं एवं ब्रिटिश शासकों पर था वे स्वतन्त्रता-संग्राम के नेता, ओजस्वी वक्ता एवं प्रसिद्ध विधिवेत्ता थे। सब से बड़ी भाग्य की बात तो यह है कि उनके पुत्र उन्हीं के समान प्रभावशाली नेता तथा स्वतन्त्र भारत के प्रथम प्रधान मन्त्री बने। इन सब बातों का कारण जानने के लिए उनकी कुण्डली पर ध्यान देना आवश्यक है।

१-७. दैवज्ञाभरण अ० १७। श्लो० ६-१६

स्व० पं० मोतीलाल नेहरू की कुण्डली
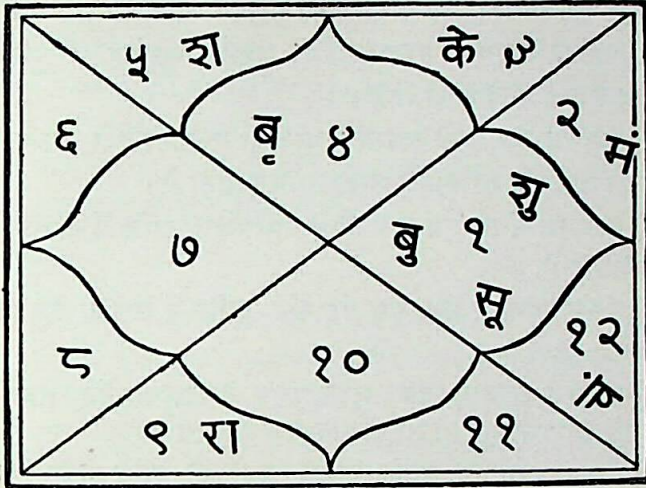
इस कुण्डली में भाग्येश गुरु लग्न में उच्चराशि में स्थित है। अत: पूर्वोक्त योग सं० क पूर्णरूपेण घटित हो रहा है। इसके अलावा एक अन्य बात यह है कि लग्नेश चन्द्रमा तथा भाग्येश गुरु दोनों एक दूसरे की राशि में हैं और राज्येश मंगल लाभ स्थान में है। इसलिए यहाँ योग सं० ङ भी घटित हो रहा है। इन दो भाग्यवर्धक योगों का प्रभाव स्व० श्री नेहरू के जीवन की समस्त गतिविधियों एवं उपलब्धियों पर पड़ा। यह भाग्यशाली योग का एक चमत्कृत उदाहरण है। आप चाहें तो ऐसे अनेक भाग्यवान् लोगों की कुण्डली में इन योगों को देख सकते हैं।

(६) सन्तान योग

विवाह या दाम्पत्य सम्बन्ध की मुख्यतम उपलब्धि सन्तान मानी गयी है। विवाह के अन्य प्रयोजनों की तुलना में सन्तान इसका मुख्यतम प्रयोजन है। इसलिए विवाह से पूर्व वर का चुनाव करते समय सन्तान-योग का विचार कर लेना चाहिए।

सन्तान के प्रतिवन्ध का योग होना वर की कुण्डली का प्रमुखतम

दोष है। इसका विचार हम अगले अध्याय में दोष-विचार के प्रसंग में करेंगे। यहाँ हम सन्तान होने के योगों की संक्षेप में चर्चा करना चाहते हैं।

(क) पञ्चम स्थान में शुभग्रह हों या उस पर शुभग्रहों की दृष्टि हो तो सन्तान का शीघ्र जन्म होता है।[1]

(ख) पञ्चमभाव अपने स्वामी से दृष्ट या युक्त हो तथा उस पर गुरु की दृष्टि हो तो निश्चित रूप से शीघ्र सन्तान होती है।[2]

(ग) चन्द्रमा, मंगल एवं शुक्र तीनों द्विस्वभाव राशि में हों तो शीघ्र सन्तान होती है।[3]

(घ) पंचम स्थान में मेष, वृष या कर्क राशि में राहु या केतु हो तो शीघ्र सन्तान होती है।[4]

(ङ) पंचमेश बलवान् होकर लग्न, पंचम या सप्तम में हो तथा उस पर पापग्रहों का प्रभाव न हो तो सन्तान-सुख मिलता है।[5]

(च) पंचम स्थान पर उसके कारक (गुरु) की दृष्टि हो तथा चन्द्र-लग्न और उससे पंचम स्थान का स्वामी एक दूसरे की राशि में हो तो सन्तान सुख अच्छा होता है।[6]

निश्चित रूप से पुत्र होने के योग

(क) पंचमभाव, पञ्चमेश या गुरु शुभ ग्रहों से दृष्टयुत हो तो

१-३. जातकाभरण—पंचमभाव विचार श्लो० ३-५

४. जातक तत्त्व अ० ७। सू. १६४

५-६. भावदीपिका—पंचमभाव श्लो० १०-१५

१-४. पुत्रस्थाने तदीशे वा गुरौ वा शुभवीक्षिते।
शुभग्रहेण संयुक्ते पुत्रप्राप्तिर्न संशयः॥
लग्नेशे पुत्रभावस्थे पुत्रेशे वलसंयुते।
परिपूर्णबले जीवे पुत्रप्राप्तिर्न संशयः॥
पुत्रस्थानगते जीवे परिपूर्णबलान्विते।
लग्नाधिपेन सन्दृष्टे पुत्रप्राप्तिर्न संशयः॥
वैशेषिकांशके जीवे पुत्रेशे च तथा स्थिते।
शुभनाथेन सन्दृष्टे पुत्रे तत्प्राप्तिमादिशेत्॥

निश्चित रूप से पुत्र होता है।[1]

(ख) लग्नेश पंचम में हो तथा पंचमेश या गुरु बलवान् हो तो निश्चित रूप से पुत्र होता है।[2]

(ग) बलवान् बृहस्पति पंचम स्थान में हो तथा उस पर लग्नेश की दृष्टि हो तो निःसन्देह पुत्र होता है।[3]

(घ) पंचमेश या गुरु वैशेषिकांश हो और पंचम स्थान पर नवमेश की दृष्टि हो तो निःसन्देह पुत्र होता है।[4]

उदाहरण

सन्तति सुख के विचारार्थ स्व० डा० गंगानाथ झा की कुण्डली लीजिए। इनके सुपुत्र डा० अमरनाथ झा अपने समय के प्रख्यात शिक्षा-शास्त्री थे। वे इलाहाबाद विश्वविद्यालय तथा काशी हिन्दू विश्व-विद्यालय के उपकुलपति रहे। उनके एक अन्य पुत्र डा० आदित्यनाथ झा आई० सी० एस० थे, जो विभिन्न राज्यों के मुख्य सचिव, संस्कृत विश्वविद्यालय वाराणसी के उपकुलपति तथा दिल्ली के उपराज्यपाल रहे। किस योग के प्रभाववश उनके पुत्र ऐसे कुलदीपक निकले। यह विचार करने के लिए उनकी कुण्डली को देखिए--

इस कुण्डली में पंचम स्थान में मकर राशि है, उस पर सन्तानकारक गुरु की दृष्टि है, जो स्वयं उच्चराशि में होने के कारण बलवान् है। दूसरी बात यह है कि चन्द्रलग्न का स्वामी गुरु, तथा उससे पंचम भाव का स्वामी चन्द्रमा ये दोनों एक दूसरे की राशि में बैठे हैं तथा पूर्ण बल-शाली है। तीसरी महत्त्वपूर्ण बात यह है कि पंचम भाव एवं उसका कारक (गुरु) ये दोनों पाप प्रभाव से मुक्त हैं। इस प्रकार यह कुण्डली सन्तान सुख के योग संख्या च का अच्छा उदाहरण है। इन योगों के परिप्रेक्ष्य में इस कुण्डली पर दृष्टिपात किया जाय तो हम आसानी से यह समझ सकते हैं कि उनके पुत्र क्यों कुलदीपक निकले ?

१-४. जातक परिजात अ० १३ श्लो० १६-१६

म० म० डा० गंगानाथ झा की कुण्डली
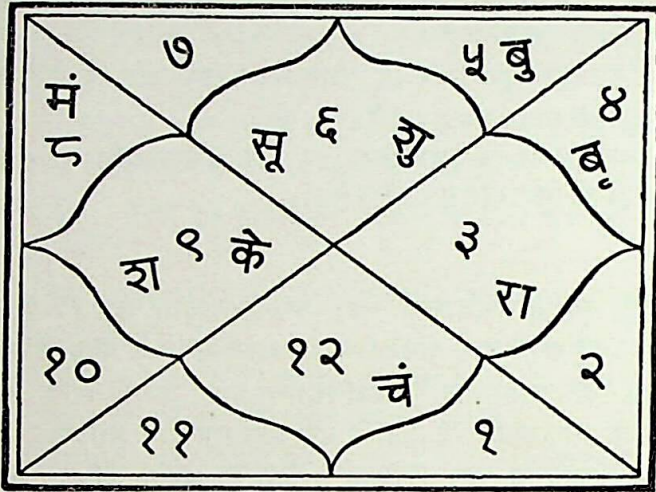
पंचम भाव न केवल सन्तान का प्रतिनिधि भाव है, अपितु वह शिक्षा का भी प्रतिनिधित्व करता है। अतः जिस योग के प्रभाववश उनके ऐसी सुपात्र सन्तान हुई, उसी योग ने उन्हें स्वयं भी एक प्रख्यात विद्वान् बनाया। वे स्वयं संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान् थे तथा वे राजकीय संस्कृत कालेज, वाराणसी के प्रधानाचार्य एवं इलाहाबाद विश्वविद्यालय के उपकुलपति रहे।[1]

---

१. इस सन्दर्भ में प्रख्यात विद्वान् होने के पूर्वोक्त योग सं० ण का अवलोकन करें।

अध्याय तृतीय

वर की कुण्डली के प्रमुख दोष

(१) अल्पायु योग, (२) रोगी योग, (३) नपुंसक योग, (४) व्यभिचारी योग, (५) दरिद्री योग, (६) संन्यासी योग, (७) सन्तानहीन योग, (८) विधुर योग एवं (९) बहुविवाह योग।

वर की कुण्डली के प्रमुख दोष

पिछले अध्याय में वर की कुण्डली के दोषों की संक्षेप में चर्चा की गयी थी। वर की कुण्डली में मुख्यतया ९ दोष माने गये हैं, जो इस प्रकार हैं—(१) अल्पायु योग, (२) रोगी योग, (३) नपुंसक योग, (४) व्यभिचारी योग, (५) दरिद्री योग, (६) संन्यासी योग (७) सन्तानहीन योग (८) विधुर योग एवं (९) बहुविवाह योग। इन दोषों में से प्रत्येक दोष दाम्पत्य सुख के लिए हानिकारक होने के कारण त्याज्य माना गया है। अतः विवाह के लिए वर का चुनाव करते समय इन दोषों का विचार कर लेना चाहिए और यदि किसी लड़के की कुण्डली में कोई दोष दिखलाई देता हो तो यथासम्भव उसके साथ विवाह करने के प्रस्ताव को टाल देना चाहिए। दोषों के विचार में उपेक्षा या भावुकता बरतने से दाम्पत्य जीवन में अनेक समस्याएँ तथा प्रपञ्च उत्पन्न हो

जाते हैं। जिसके परिणामस्वरूप दाम्पत्य जीवन नीरस, क्लेशमय या दुःखमय बन सकता है।

वर की योग्यता या उपयुक्तता का मानदण्ड मात्र उसका गुण सम्पन्न होना नहीं है। यदि हम गुण-सम्पन्न व्यक्ति को ही योग्य या उपयुक्त मान लें तो यह हमारी भूल कहलायेगी। उदाहरण के तौर पर मान लीजिए कि एक लड़के का स्वास्थ्य, शिक्षा, भाग्य, चरित्र एवं आयु का योग अच्छा है। इन सब गुणों के होते हुए यदि उसकी कुण्डली में नपुंसक या संन्यासी योग हो तो क्या आप विवाह के लिए उसका चुनाव कर लेंगे? हमारी समझ में ऐसा कदापि नहीं करना चाहिए। इस प्रकार वर की कुण्डली में किसी भी एक दोष का होना उसे विवाह के अयोग्य सिद्ध कर सकता है। जब कि उसकी कुण्डली के गुण उसे विवाह के योग्य नहीं बना सकते। वास्तविक रूप में उसकी योग्यता का मापदण्ड दोष का अभाव तथा गुण सम्पन्न होना ही है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि वर की योग्यता की परीक्षा के लिए उसके गुण एवं दोषों दोनों का ध्यानपूर्वक विचार करना आवश्यक है। गुणों का विवेचन पिछले अध्याय में किया जा चुका है। अब इस अध्याय में हम वर की कुण्डली के दोषों पर प्रकाश डालना चाहेंगे।

(१) अल्पायु योग

वर की कुण्डली में अल्पायु योग होना उसकी कुण्डली तथा योग्यता का प्रमुखतम दोष है। जिस व्यक्ति की उम्र ही पूरी न हो उसके साथ विवाह करने से दाम्पत्य-सुख कैसे मिल पायेगा? इस स्थिति में विवाह करना वैधव्य को निमन्त्रण देना ही मानना चाहिए। इसलिए विवाह के लिए वर का चुनाव करते समय उसकी आयु एवं विशेषकर अल्पायु योगों का विचार अवश्य कर लेना चाहिए।

इस प्रसंग में एक शंका यह उठाई जा सकती है कि अल्पायुयोग वाले लड़के का विवाह करना चाहिए या नहीं? इस विषय में हमारा मत यह है कि लड़के की कुण्डली में अल्पायु योग होने पर उसकी आयु

का निर्णय किसी विद्वान् ज्योतिषी से करा लेना चाहिए। फिर भी यदि उसका विवाह करना अभीष्ट हो तो किसी अल्पायु योगवाली लड़की या उसके समान उम्रवाली लड़की से उसका विवाह किया जा सकता है। इस रीति से पति-पत्नी का चुनाव कर वैधव्य की सम्भावना से मुक्ति पायी जा सकती है।

अल्पायु योगों में अधिकतम आयु ३२ वर्ष मानी गयी है। हमारे आचार्यों ने बालारिष्ट की अवधि १६ वर्ष तक मानी है और उसके बाद अल्पायु की अवधि ३२ वर्ष तक बतलायी है। अतः अल्पायु योग में न्यूनतम आयु १६ वर्ष और अधिकतम आयु ३२ वर्ष होती है। अल्पायु के कुछ प्रमुख योग इस प्रकार हैं—

(क) कर्क के नवांश में शनि हो और उस पर गुरु की दृष्टि हो तो व्यक्ति की आयु १६ वर्ष की होती है।[1]

(ख) मिथुन के नवांश में स्थित शनि को लग्नेश देखता हो तो १७वें वर्ष में मृत्यु होती है।[2]

(ग) लग्नेश एवं अष्टमेश दोनों पापग्रह हों, वे एक दूसरे की राशि में हों या १२वें एवं ६ठे स्थान में हों और गुरु के साथ न हों तो १८वें वर्ष में मृत्यु होती है।[3]

(घ) गुरु के नवांश में स्थित शनि पर राहु की दृष्टि हो तथा उच्च-राशि में स्थित लग्नेश को शुभ ग्रह न देखते हों तो १९वें वर्ष में मृत्यु होती है।[4]

१-४. जातक पारिजात अ० ४ श्लो० ५६-५९

कर्कांशकस्थिते मन्दे जीवदृष्टिसमन्विते।
सर्पपीडा भवेत्तस्य षोडशाब्दान्मृतिं वदेत्॥
यमांशकस्थिते मन्दे लग्ननाथेन वीक्षिते।
रणशूरो महाभोगी मृतः सप्तदशाब्दके॥
परस्परक्षेत्रसमन्वितौ वा रन्ध्रेशलग्नाधिपती न सौम्यौ।
रिफारिभे वा गुरुणा वियुक्ते त्वष्टादशाब्दे निधनं प्रयाति॥
जीवांशकस्थिते मन्दे राहुणा च निरीक्षिते।
देहाधिपे शुभादृष्टे जातः सद्यो विनश्यति॥

(ङ) केन्द्र में पापग्रह हो और उन्हें चन्द्रमा या शुभ ग्रह न देखते हों तो व्यक्ति की आयु २० वर्ष की होती है।[1]

(च) कर्क लग्न में गुरु के साथ सूर्य हो तथा अष्टमेश केन्द्र में हो तो २२वें वर्ष में मृत्यु होती है।[2]

(छ) शनि शत्रु की राशि में हो तथा शुभ ग्रह आपोक्लिम स्थानों में हो तो मनुष्य की आयु २६ या २७ वर्ष की होती है।[3]

(ज) अष्टमेश पापग्रह पर गुरु की दृष्टि हो और अष्टम स्थान में स्थित जन्मराशीश पर पापग्रह की दृष्टि हो तो २८वें वर्ष में मृत्यु होती है।[4]

(झ) चन्द्रमा का शनि से सम्बन्ध हो तथा सूर्य अष्टम स्थान में स्थित हो तो २९वें वर्ष में मृत्यु होती है।[5]

(ञ) जन्मपति एवं अष्टमेश के बीच चन्द्रमा हो और बृहस्पति १२वें स्थान में हो तो २७ या ३० वर्ष की आयु में मृत्यु होती है।[6]

(ट) अष्टमेश केन्द्र में हो तथा लग्नेश निर्बल हो तो ३२ वर्ष की आयु में मृत्यु होती है।[7]

(ठ) पापग्रह त्रिक स्थानों में हों, लग्नेश निर्बल हो और वह शुभ-ग्रहों से दृष्ट-युत न हो तो मनुष्य अल्पायु होता है।[8]

(ड) अष्टमेश या शनि पापग्रहों के साथ क्रूर षष्ठ्यंश में हों तो मनुष्य अल्पायु होता है।[9]

(ढ) द्वितीय एवं द्वादश में पापग्रह हों तथा उन पर शुभ ग्रहों की दृष्टि न हो तो मनुष्य अल्पायु होता है।[10]

उदाहरण

अल्पायु योग के विचारार्थ अगले पृष्ठ पर कुण्डली देखिए—

१-१०. जातक पारिजात अ० ८। श्लो० ६०-७०
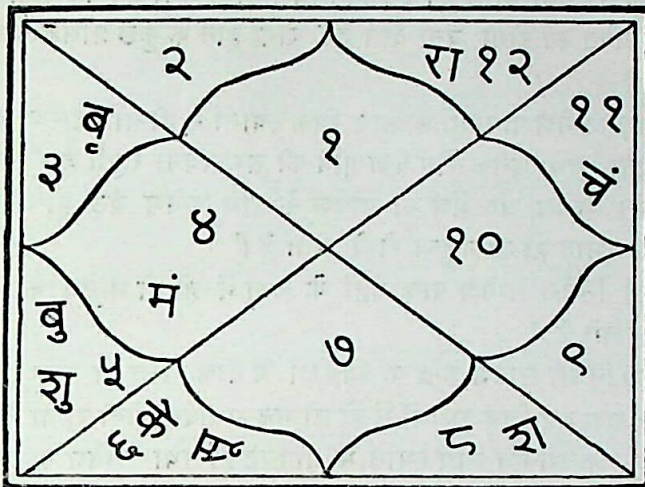
इस कुण्डली में अष्टमेश मंगल केन्द्र में है, वही लग्नेश होकर नीच राशि में बैठा है। ६,८ एवं १२वें स्थानों में पापग्रह है तथा लग्नेश निर्बल है। इस प्रकार योग सं० ट एवं ठ दोनों इस कुण्डली में घटित होने के कारण अल्पायु योग सिद्ध होता है।

(२) रोगी योग

जिस व्यक्ति का स्वास्थ्य ही अच्छा न हो क्या वह सुखी रह सकता है ? संसार के सभी सुखों की प्राप्ति अच्छे स्वास्थ्य से ही सम्भव है। एक रोगी व्यक्ति दाम्पत्य सुख प्राप्त नहीं कर सकता—इसे सिद्ध करने के लिए किसी प्रमाण की अपेक्षा नहीं है। अतः कन्या के विवाहार्थ वर का चुनाव करते समय उसके स्वास्थ्य और विशेष कर कुण्डली में रोगीयोग का विचार कर लेना चाहिए। रोगी होना कोई साधारण दोष नहीं है। यह दोष समस्त जीवन को कष्टमय बना सकता है।

हमारी राय में इस दोष का विचार करते समय गुप्त रोगों का भी ध्यान रखना चाहिए। ज्योतिष शास्त्र में स्वास्थ्य का विचार लग्न से, रोग का विचार षष्ठस्थान से तथा गुप्त रोगों का विचार अष्टम स्थान

एवं शुक्र से किया जाता है। इन का निर्बल होना तथा इन पर पाप प्रभाव होना व्यक्ति को रोगी बना देता है। रोगी होने के कुछ प्रसिद्ध योग इस प्रकार हैं—

(क) लग्नेश पापग्रहों के साथ त्रिक स्थानों में हो तो स्वास्थ्य अच्छा नहीं होता, तथा अनेक रोग पैदा होने की सम्भावना रहती है।[१]

(ख) षष्ठेश, अष्टमेश या व्ययेश के साथ लग्नेश बैठा हो और उस पर पाप प्रभाव हो तो मनुष्य रोगी होता है।[२]

(ग) निर्बल लग्नेश पाप ग्रहों के लग्न में हो तो मनुष्य को अनेक रोग घेर लेते हैं।[३]

(घ) निर्बल लग्नेश केन्द्र या त्रिकोण में नीच राशि या शत्रु राशि में हो तथा शुभ ग्रह त्रिक स्थानों में हों तो मनुष्य सदैव रोगी रहता है।[४]

(ङ) अष्टम एवं व्यय स्थान में पापग्रह हों तथा लग्नेश षष्ठ स्थान में हो तो व्यक्ति रोगी होता है।[५]

कुछ महत्त्वपूर्ण योग

(क) अष्टम स्थान में मंगल, सूर्य या शनि हो और उस पर नीच राशिगत, शत्रु राशिगत एवं पापग्रह की दृष्टि हो तो गुप्त रोग होता है।[६]

(ख) अष्टम स्थान में पापग्रहों की अधिकता हो तथा उन पर पाप-ग्रहों की दृष्टि हो तो गुप्त रोग होता है।[७]

(ग) शुक्र एवं लग्नेश दोनों त्रिक स्थानों में हों तो क्षयरोग (तपेदिक) होता है।[८]

(घ) सूर्य, गुरु एवं शनि तीनों चतुर्थ स्थान में हों तो हृदय-रोग होता है।[९]

(ङ) शनि, मंगल, रवि एवं चन्द्रमा, अष्टम, षष्ठ, द्वितीय एवं

१-५. दैवज्ञभरण अ० ६। श्लो० ५२-५७

६-७. तत्रैव अ० १६। श्लो० ६,१२

८-९. जातकतत्त्व अ० ८

द्वादश स्थान में हों तो वीर्य-विकार होता है।[१]

(च) शनि एवं चन्द्रमा साथ-साथ हों तथा उन पर मंगल की दृष्टि हो तो व्यक्ति को अपस्मार (मृगी) रोग होता है।[२]

(छ) सूर्य, शुक्र एवं शनि तीनों पंचम स्थान में हों तो प्रमेह रोग होता है।[३]

(ज) कारकांश लग्न से चतुर्थ में चन्द्रमा हो और उस पर शुक्र की दृष्टि हो तो मनुष्य कोढ़ी होता है।[४]

(झ) लग्न में शनि और सप्तम में मंगल हो तो बवासीर रोग होता है।[५]

(ञ) लग्न में गुरु एवं सप्तम में मंगल हो तो उन्माद (पागलपन) होता है।[६]

(ट) क्षीण चन्द्रमा एवं शनि दोनों बारहवें स्थान में हों तो उन्माद रोग होता है।[७]

(३) नपुंसक योग

नपुंसक व्यक्ति के साथ विवाह करना सर्वथा अनुचित है—इस बात को सिद्ध करने के लिए किसी तर्क की आवश्यकता नहीं है। यह एकमात्र दोष दाम्पत्य सुख की कल्पना को धराशायी कर सकता है। अतः वर का चुनाव करते समय उसकी कुण्डली में इस दोष का अवश्य ध्यान रखना चाहिए। निम्नलिखित योगों में उत्पन्न व्यक्ति नपुंसक होता है—

(क) जिसकी कुण्डली में विषम राशि में [सूर्य एवं समराशि में] चन्द्रमा हों और परस्पर देखते हों वह नपुंसक होता है।[८]

(ख) शनि विषम एवं बुध समराशि में हों और ये दोनों परस्पर देखते हों तो व्यक्ति नपुंसक होता है।[९]

१-५. जातकतत्त्व अ० ८

६-७. तत्रैव अ० ३। सू० १५१-१५६

८-९. बृहज्जातक अ० ४ श्लो० १३

(ग) विषम राशि में मंगल तथा समराशि में सूर्य हो और ये दोनों परस्पर देखते हों तो मनुष्य नपुंसक होता है।[१]

(घ) लग्न एवं चन्द्रमा दोनों विषम राशि में हों तथा उन्हें समराशिगत मंगल देखता हो तो व्यक्ति नपुंसक होता है।[२]

(ङ) विषम राशि में चन्द्रमा और समराशि में बुध हो और दोनों को मंगल देखता हो तो मनुष्य नपुंसक होता है।[३]

(च) लग्न, चन्द्रमा एवं शुक्र तीनों विषम राशि तथा विषम राशि के नवांश में हों तो नपुंसक होता है।[४]

(छ) शुक्र एवं शनि अष्टम स्थान में हों तो व्यक्ति नपुंसक होता है।[५]

(ज) शुक्र से षष्ठ या अष्टम स्थान में शनि हो तो व्यक्ति नपुंसक होता है।[६]

(४) व्यभिचारी योग

दाम्पत्य सम्वन्ध के सन्दर्भ में अपनी पत्नी से प्रेम करने वाला उसे अपना सर्वस्व समझने वाला व्यक्ति ही चरित्रवान् कहलाता है। अन्य स्त्री को चाहने वाला या उसके साथ यौन सम्बन्ध रखने वाले व्यक्ति को चरित्रहीन समझना चाहिए। एक अकेला व्यभिचारी योग दाम्पत्य जीवन को नीरस तथा दाम्पत्य-सम्बन्धों को कटुतामय बनाने के लिए पर्याप्त है। अतः विवाह का विचार करते समय इस दोष का सावधानी पूर्वक विचार कर लेना चाहिए।

निम्नलिखित योगों में उत्पन्न व्यक्ति व्यभिचारी होता है—

(क) लग्न में द्वितीयेश, सप्तमेश, षष्ठेश एवं शुक्र पाप ग्रहों के साथ हों तो मनुष्य व्यभिचारी होता है।[७]

(ख) लग्नेश एवं षष्ठेश दोनों पापग्रहों के साथ हों तो व्यक्ति पर-

---

१-४. बृहज्जातक अ० ४। श्लो० १३

५-६. जातकतत्त्व अ० ३। सू० १४४, ४६

७. सर्वार्थचिन्तामणि

स्त्रीगामी होता है।[1]

(ग) लग्नेश द्वितीयेश या षष्ठेश के साथ पापग्रह सप्तम स्थान में हो तो व्यक्ति व्यभिचारी होता है।[2]

(घ) द्वितीयेश, सप्तमेश एवं दशमेश दशम स्थान में हो तो मनुष्य व्यभिचारी होता है।[3]

(ङ) लग्नेश पापग्रहों से दृष्ट-युत हो तो व्यक्ति व्यभिचारी होता है।[4]

(च) तृतीय, षष्ठ, सप्तम या द्वादश स्थान में शुक्र या द्वितीयेश हो और उस पर पापग्रह की दृष्टि हो तो व्यक्ति व्यभिचारी होता है।[5]

यौन-सम्बन्ध किसके साथ होंगे ?

व्यक्ति के यौन सम्बन्ध किसके साथ हैं ? यह जानने के लिए सर्वप्रथम व्यभिचारी योग का विचार करना चाहिए। यदि किसी की कुण्डली में व्यभिचारी योग हो तो योग कारक ग्रह का निश्चय कर लेना चाहिए। योग कारक ग्रह अधिक हों तो उनमें से बलवान् ग्रह से यौन-सम्बन्ध का विचार करना चाहिए। यदि ऐसा ग्रह सूर्य हो तो मनुष्य किसी विधवा, प्रौढ़ा एवं प्रभावशाली महिला से यौन-सम्बन्ध रखता है। उक्त ग्रह चन्द्रमा हो तो किसी अविवाहिता, भोली, पागल या अल्पवयस्का के साथ यौन-सम्बन्ध होते हैं। उक्त ग्रह मंगल हो तो किसी उग्र या क्रूर स्वभाव वाली अथवा अनैतिक कार्यों में संलग्न स्त्री से यौन-सम्बन्ध होते हैं। उक्त ग्रह बुध हो तो वेश्या के साथ, गुरु हो तो विदुषी के साथ एवं शुक्र हो तो किसी अतिचतुर स्त्री के साथ यौन-सम्बन्ध होते

१-३. सर्वार्थचिन्तामणि

४. दैवज्ञाभरण अ० १५ श्लोक २३

पष्ठे तृतीये व्ययगे मदे च भृगोः सुते नेत्रपसंयुते वा।
पापेक्षिते तत्परदारगामी शुभेक्षिते तत्स्वकदारयुक्त; ॥

५. दैवज्ञाभरण अ० १५। श्लोक २६

हैं। यदि उक्त ग्रह शनि हो तो किसी नीच जाति की स्त्री या कुरूपा स्त्री के साथ यौन-सम्बन्ध बतलाने चाहिए।

उदाहरण

यहाँ हम एक प्रसिद्ध व्यक्ति की कुण्डली प्रस्तुत कर रहे हैं, जिसके अनैतिक प्रेम सम्ब्रन्धों की कहानियाँ सर्वविदित हैं। ये सज्जन हैं स्वर्गीय प्रेसीडेण्ट कैनेडी की पत्नी के पति (अब स्वर्गीय) मि० एरिस्टाटिल ओनासिस।
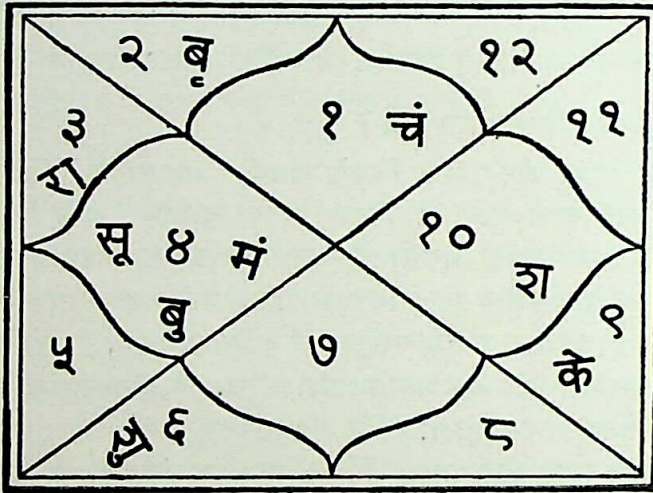
इस कुण्डली में लग्नेश मंगल और षष्ठेश बुध ये दोनों सूर्य के साथ हैं, जो एक पापग्रह माना गया है तथा लग्नेश मंगल भी पापग्रहों से दृष्ट एवं युत है। इस प्रकार उक्त कुण्डली पूर्वोक्त योगों में से योग सं० ख एवं (ङ) पूर्णरूपेण घटित होते हैं।

(५) दरिद्री योग

यह सर्वविदित है कि दरिद्रता एक ऐसा दोष है जो व्यक्ति के व्यक्तित्व को विकृत और उसके गुणों को नष्ट करने के साथ-साथ जीवन

को क्लेशमय बना देता है। अतः इस दोष का भी ध्यान पूर्वक विचार करके ही विवाह करना चाहिए। निम्नलिखित योग दरिद्रता-दायक होते हैं—

(क) अष्टमेश नवमेश से बली हो तो व्यक्ति दरिद्री होता है।[1]

(ख) बृहस्पति लग्नेश होकर केन्द्र से बाहर बैठा हो तथा अस्तंगत हो और लाभेश निर्बल हो तो मनुष्य दरिद्री होता है।[2]

(ग) गुरु, मंगल, शनि एवं बुध नीच राशि में या अस्तंगत होकर क्रमशः एकादश, षष्ठ, द्वादश या पंचम में हो तो व्यक्ति दरिद्री होता है।[3]

(घ) भाग्य स्थान में स्थित शनि को पापग्रह देखते हों तथा लग्न में नीच नवांश में बुध सूर्य के साथ हो तो मनुष्य दरिद्री होता है।[4]

(ङ) शुक्र, गुरु, चन्द्रमा एवं मंगल क्रमशः लग्न, दशम, नवम, सप्तम या पंचम में नीच राशि में हो तो व्यक्ति दरिद्री होता है।[5]

(च) लग्न में चरराशि एवं चरनवांश हो और उस पर शनि तथा नीच राशिगत गुरु की दृष्टि हो तो मनुष्य दरिद्री होता है।[6]

(छ) गुरु, षष्ठ या द्वादश स्थान में हो तथा स्वराशि में न हो तो व्यक्ति दरिद्री होता है।[7]

(ज) लग्न में स्थिर राशि हो, पापग्रह केन्द्र या त्रिकोण में तथा शुभ ग्रह केन्द्र के बाहर हों तो मनुष्य दरिद्री होता है।[8]

(झ) लग्नेश निर्बल, धनेश अस्तंगत और केन्द्र में पापग्रह हों तो मनुष्य दरिद्री होता है।[9]

(ञ) द्वितीय स्थान में पापग्रह हो उस पर पापग्रह की दृष्टि हो तथा

भाग्येश्वरादतिबलो निधनेश्वरो वा,
लग्नाधिपस्त्रिदशनाथगुरुर्यदि स्यात्।
केन्द्राद्बहिर्दिनकरस्य कराभितप्तो,
लाभाधिपोयदि विहीनबलो दरिद्रः॥

१-२. जातकपारिजात अ० ६। श्लोक २८
३-९. जातकपारिजात अ० ६। श्लोक २९-३४

धनेश अस्तंगत या निर्बल हो तो मनुष्य दरिद्री होता है।[1]

(ट) धनेश त्रिक स्थान में हो तथा पापग्रह धन-स्थान में हो तो मनुष्य दरिद्री होता है।[2]

(६) संन्यासी योग

संन्यास एवं गृहस्थ दोनों परस्पर भिन्न मार्ग हैं। इनमें से एक में प्रवृत्ति का कारण वैराग्य तथा दूसरे में प्रवृत्ति का कारण अनुराग होता है। संन्यास के लिए भोगों का त्याग अनिवार्य है जब कि गृहस्थ के लिए भोगोपभोग की अनिवार्यता है। संन्यासी संसार से मुक्ति चाहता है, किन्तु गृहस्थी को संसार में अनुरक्ति होने के कारण वह केवल भुक्ति चाहता है। इसीलिए संन्यास एवं गृहस्थ दोनों परस्पर विरोधी वृत्तियाँ मानी गयी हैं।

दाम्पत्य-सुख का विचार करते समय संन्यास एक दोष माना जाता है, क्योंकि वह गृहस्थ का विरोधी भाव है। अत: जिस व्यक्ति की कुण्डली में संन्यासी योग हो उसके साथ विवाह नहीं करना चाहिए। संन्यासी होने के कतिपय अनुभव सिद्ध योग[3] इस प्रकार हैं—

(क) नवमेश एवं दशमेश ये दोनों अष्टमेश या षष्ठेश के साथ हों तो व्यक्ति संन्यासी होता है।

(ख) लग्नेश एवं शनि निर्बल हों तो मनुष्य संन्यास ग्रहण कर लेता है।

(ग) चार या अधिक ग्रह एक साथ हों तो मनुष्य संन्यासी हो जाता है।

(घ) चन्द्रमा शनि के द्रेष्काण या शनि-मंगल के नवांश में हो और उस पर केवल शनि की दृष्टि हो तो मनुष्य संन्यासी हो जाता है।

(ङ) सूर्य, चन्द्र या गुरु में से एक भी ग्रह निर्बल होकर लग्न, दशम

१-२. सर्वार्थचिन्तामणि

३. विस्तृत जानकारी के लिए सारावली का प्रव्रज्या योगाध्याय देखिए।

या द्वादश स्थान में हो और उस पर बलवान् शनि की दृष्टि हो तो व्यक्ति संन्यासी होता है।

उदाहरण

संन्यासी योगों के विचारार्थ योगिराज श्री अरविन्द एवं स्वामी श्री विवेकानन्द की कुण्डलियाँ प्रस्तुत हैं—

योगिराज श्री अरविन्द
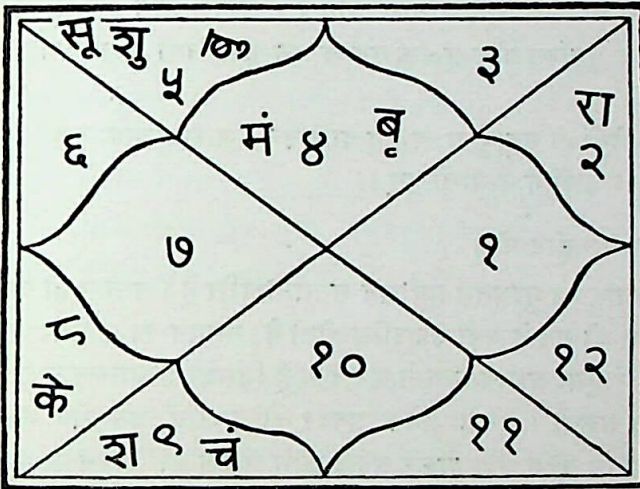
स्वामी श्री विवेकानन्द
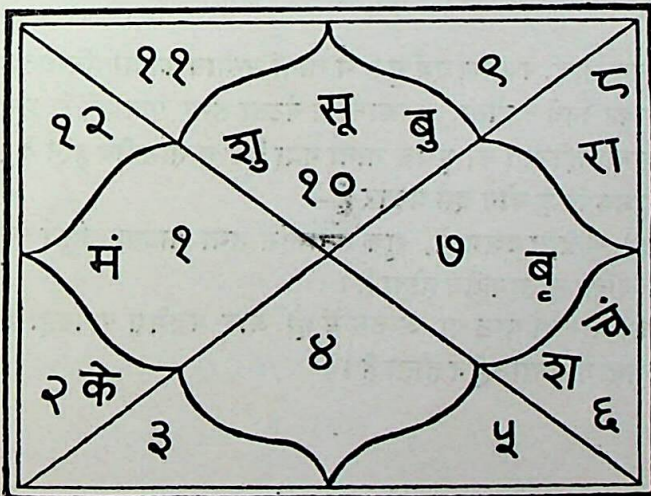
योगिराज श्री अरविन्द की कुण्डली नवमेश गुरु है तथा दशमेश मंगल है। ये दोनों साथ-साथ लग्न में बैठे हैं और गुरु के षष्ठेश होने के कारण इनका षष्ठेश से भी योग है। इस कुण्डली में लग्नेश चन्द्रमा शनि के साथ ६ठे स्थान में स्थित है तथा ये दोनों निर्बल हैं। इसी प्रकार स्वामी श्री विवेकानन्द की कुण्डली में नवमेश बुध एवं दशमेश शुक्र इन दोनों का अष्टमेश सूर्य के साथ योग है। लग्नेश शनि ९वें स्थान में है। इस तरह पूर्वोक्त योग सं० क एवं ख इन कुण्डलियों में पूर्णरूपेण घटित होते हैं।

ये दोनों ही महापुरुष महान् दार्शनिक, आध्यात्मिक जगत् के नेता एवं सच्चे अर्थों में संन्यासी हुए।

(७) सन्तानहीन-योग

विवाह का मुख्यतम प्रयोजन सन्तानोत्पत्ति है। सन्तान ही दाम्पत्य-सम्बन्धों की सब से बड़ी उपलब्धि होती है। सन्तान का न होना दाम्पत्य-जीवन में ऐसा अभाव उत्पन्न कर देता है जिसकी सामान्यतया पूर्ति नहीं की जा सकती। इससे अनेक प्रकार की कुण्ठाएँ, असन्तोष, मानसिक ग्रन्थियाँ या वहम पैदा होकर अच्छे-खासे जीवन को नीरस या क्लेशमय बना सकते हैं। अतः विवाह से पूर्व वर का चुनाव करते समय उसकी कुण्डली में इस योग का भलीभाँति विचार कर लेना आवश्यक माना गया है।

पंचम भाव, पंचमेश एवं गुरु ये तीनों सन्तान का प्रतिनिधित्व करते हैं। इनका निर्बल होना, दुःस्थानों में बैठना तथा पापग्रहों से प्रभावित होना सन्तानहीनता का सूचक माना गया है। सन्तानहीन होने के कतिपय अनुभव सिद्ध योग इस प्रकार हैं—

(क) चन्द्रमा दशम में, शुक्र सप्तम में तथा पापग्रह चतुर्थ स्थान में हों तो व्यक्ति सन्तानहीन होता है।

(ख) लग्नेश षष्ठ या अष्टम में हो और पंचमेश पापग्रहों के साथ हो तो मनुष्य सन्तानहीन होता है।

(ग) लग्न, सप्तम, नवम या द्वादश स्थान में शत्रु राशि या शत्रु वर्ग में पापग्रह हों तो मनुष्य के सन्तान नहीं होती।

(घ) तृतीयेश लग्न, तृतीय, पंचम या द्वादश स्थान में हो तो या तो सन्तान नहीं होती और होती हैं तो मर जाती हैं।

(ङ) लग्नेश, पंचमेश, सप्तमेश एवं गुरु ये सब निर्बल हों तो सन्तान नहीं होती।

(च) पंचम स्थान में पापग्रह हों, पंचमेश नीच राशि में हो तथा उन पर शुभ ग्रहों की दृष्टि न हो तो सन्तान नहीं होती।

(छ) गुरु, लग्न एवं चन्द्रमा इन तीनों से पंचम स्थान में पाप ग्रह हों तथा उन पर शुभ ग्रहों की दृष्टि न हो तो सन्तान नहीं होती।

(ज) गुरु पापग्रहों के नीच में हो, पंचमेश निर्बल हो तथा उन पर शुभ प्रभाव न हो तो सन्तान नहीं होती।

उदाहरण

इन योगों के विचारार्थ एक सज्जन की कुण्डली प्रस्तुत है, जिनके
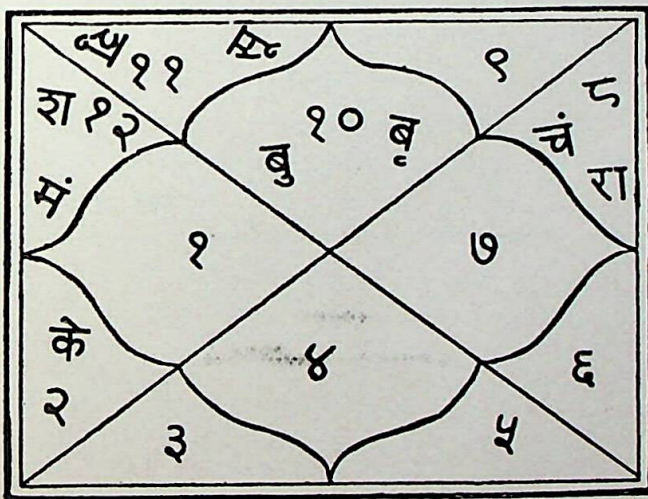
कोई सन्तान नहीं है। इस कुण्डली में पूर्वोक्त योग सं० घ एवं छ पर ध्यान दीजिये।

(८) विधुर योग एवं (९) बहुविवाह योग

पति-पत्नी में से किसी एक की मृत्यु दाम्पत्य-सुख को नष्ट कर देती है। इसलिए विधवा या विधुर होने का योग दाम्पत्य-जीवन के लिए एक महत्त्वपूर्ण दोष माना गया है। सौतेला व्यवहार एवं सौतिया डाह बहु-विवाह के न्यूनतम किन्तु अनिवार्य परिणाम हैं। इससे गृह-कलह, आपसी मतभेद एवं रोजमर्रा के अनेक प्रपञ्च उत्पन्न हो जाते हैं। अनेक वार यह हत्या एवं आत्महत्या का कारण भी बन जाता है। इसलिए वहु-विवाह योग भी एक दोष माना गया है। इन दोनों प्रकार के योगों का विवेचन प्रसंगवश अगले अध्यायों में किया जायेगा।

अध्याय चतुर्थ

विवाह के योग्य वधू का चुनाव

वरणीय कन्या के प्रमुख गुण—

१. अच्छा स्वास्थ्य, २. शालीन स्वभाव, ३. अच्छा भाग्य, ४. समुचित शिक्षा, ५. पतिव्रता योग एवं ६. सन्तति सुख।

जिस प्रकार विवाह के लिए योग्य एवम् उपयुक्त वर का चुनाव करते समय उसके गुण-दोषों की परीक्षा करना आवश्यक माना गया है उसी प्रकार गुण एवं दोषों के आधार पर भलीभाँति परीक्षा कर योग्य वधू का चुनाव करना चाहिए।

कन्या के गुण एवं दोषों की ज्योतिष शास्त्र में विस्तार पूर्वक चर्चा की गयी है। इन गुण-दोषों को हम दो वर्गों में विभक्त कर सकते हैं। १. प्रत्यक्ष दिखलाई पड़ने वाले गुण-दोष तथा २. अनुमेय गुण-दोष। प्रत्यक्ष या स्पष्ट दिखलाई देने वाले गुण तथा दोषों का विवेचन सामुद्रिक ग्रन्थ, संहिता ग्रन्थों एवं कुछ जातक ग्रन्थों में किया गया है। ये गुण एवं दोष ऐसे हैं जो प्राय: कन्या के व्यक्तित्व का एक अंग होते हैं, और कन्या को देखकर उन्हें जाना जा सकता है। अनुमेय गुण-दोष इस प्रकार

के होते हैं जिन्हें हम कन्या को देखकर नहीं जान सकते, अपितु उसकी कुण्डली के योगों का सावधानी पूर्वक विचार करने पर ही जिनकी जानकारी होती है।

प्रत्यक्ष दिखलाई देने वाले दोषों में प्रमुख दोष इस प्रकार हैं—चपटे माथे वाली, कुबड़ी, अंगहीन, बहुत मोटी, बहुत लम्बी, मोटे दाँत और होठ वाली, पीली आँखों वाली, मोटी कमर वाली, अधिक रोम वाली, दाढ़ी एवं मूँछ के बालों वाली, रोगिणी, अन्धी, बहरी, गंजी, टेड़ी आँखों वाली, लज्जाहीन, बहुत बोलने वाली, कठोर आवाज वाली, झगड़ालू, ढीट, भयंकर नाम वाली, कुरूपा, पुरुषों जैसी आकृति या व्यवहार करने वाली, दु:साहस सम्पन्न एवं माँ की एकमात्र सन्तान—ये सब कन्या के दोष हैं—इस प्रकार की कन्या से यथासम्भव विवाह नहीं करना चाहिए। कन्या के गुणों में प्रमुख हैं—आकर्षक व्यक्तित्व, मधुर स्वर, ललित गति, सुकुमार या कोमल अंग, साफ रंग, कोमल एवं काले केश, छोटे दाँत, बड़ी एवं लम्बी आँखें, पतली भौं एवं होठ, छोटे दांत, पतली कमर, लम्बी उंगली, साफ एवं लाल नाखून, सुर्ख होठ, कम रोम, लम्बी नाक, हँसमुख एवं शालीन स्वभाव, व्यवहार पटु, सुन्दर नाम, अच्छी शिक्षा, अच्छा कुल, सुडौल अंग, दुबला-पतला शरीर, हंस या गज जैसी चाल, उन्नत वक्ष, पुष्ट नितम्ब, पुष्ट जघन, गम्भीर नाभि तथा जीवित भाई होना ये सब कन्या के गुण माने गये हैं। ऐसी कन्या के साथ विवाह करना चाहिए।

सामान्यतया कन्या का स्वास्थ्य, शिक्षा, कुल स्वभाव एवं व्यक्तित्व इनके बारे में काफी जानकारी उसे देखकर प्राप्त की जा सकती है। यदि देखने के बाद भी इस विषय में सन्देह हो तो इनका विचार उसकी कुण्डली से किया जा सकता है। किन्तु उसकी आयु, चरित्र, भाग्य, सौभाग्य एवं प्रजनन क्षमता आदि का विचार उसे देखकर नहीं किया जा सकता है। अतः इन्हें अनुमेय गुण-दोष कहा जा सकता है। इनका विचार केवल उसकी कुण्डली के योगों द्वारा ही सम्भव है। इसलिए हम इस अध्याय में इन गुणों का और अगले अध्याय में दोषों का विस्तार

पूर्वक विचार करेंगे।

कन्या की कुण्डली के प्रमुख गुण

कन्या की कुण्डली में जिन गुणों का विचार किया जाता है, उसमें से मुख्य हैं : (१) अच्छा स्वास्थ्य, (२) शालीन स्वभाव, (३) समुचित शिक्षा, (४) अच्छा भाग्य, (५) पतिव्रता योग एवं (६) सन्ततिसुख। इस अध्याय में हम इन गुणों का ज्योतिष के आधार पर विवेचन करेंगे।

(१) अच्छा स्वास्थ्य

सुखी जीवन के लिए स्वास्थ्य का अच्छा रहना आवश्यक है। यदि व्यक्ति का स्वास्थ्य ही अच्छा न हो तो उसका जीवन कष्टमय या क्लेशमय बन जाता है, तथा वह परिवार के अन्य लोगों के लिए भी एक भार हो जाता है। अतः विवाह से पूर्व कन्या के स्वास्थ्य का विचार करने की अनिवार्यता को उपेक्षित नहीं किया जा सकता।

पिछले अध्यायों में जिस प्रकार वर के स्वास्थ्य का विचार किया था, ठीक उसी प्रकार कन्या की कुण्डली से पूर्वोक्त योगों के आधार पर उसके स्वास्थ्य का विचार कर लेना चाहिए। आप जानते ही हैं कि कुण्डली में लग्न एवं लग्नेश स्वास्थ्य का प्रतिनिधित्व करते हैं। ये दोनों शुभ स्थान में बैठे हों, वलवान् हों तथा इन पर शुभ प्रभाव हों तो स्वास्थ्य अच्छा रहता है। किन्तु यदि ये त्रिक-स्थान में स्थित हों, पापग्रहों से दृष्ट या युत हों अथवा दुर्बल हों तो स्वास्थ्य अच्छा नहीं रहता।

स्वास्थ्य का विचार करते समय रोग के योगों का भी ध्यान रखना चाहिए। स्त्री-रोगों के योगों का विचार प्रसंगवश अगले अध्याय में किया जायेगा, तथा सामान्य रोगों का विचार अध्याय ३ में किया जा चुका है। इन अध्यायों में बतलाये गये योगों के आधार पर कुण्डली की अच्छी तरह परीक्षा कर लेनी चाहिए। जव कन्या की कुण्डली में रोग का योग न हो तथा अच्छे स्वास्थ्य का योग[1] हो तो उसका स्वास्थ्य

---

१. देखिये—अध्याय २

अच्छा रहता है।

(२) शालीन स्वभाव

व्यक्ति के स्वभाव का सम्बन्धों पर सर्वाधिक प्रभाव पड़ता है। शान्त, शालीन, उदार, मधुर सहनशील एवं मिलनसार व्यक्ति के साथ सभी लोग सम्बन्ध रखना चाहते हैं। यही नहीं ऐसे लोगों के सम्बन्धों में अपेक्षाकृत अधिक स्थायित्व भी रहता है। इसलिए मित्रता, विवाह एवं साझेदारी से पूर्व स्वभाव की जानकारी कर लेनी चाहिए।

जिन लोगों के स्वभाव एवं रुचि में समानता होती है, उनमें प्रेम एवं मित्रता सहज रूप से हो जाती है। यदि प्रकृति एवं रुचि में कुछ अन्तर भी हो, किन्तु दो व्यक्तियों का स्वभाव अच्छा हो तो भी वे दोनों काफी समय तक सुखपूर्वक रह सकते हैं। कन्या एक भिन्न परिवार एवं परिवेष से आकर विवाह के बाद परिवार का महत्त्वपूर्ण अङ्ग बन जाती है। परिवार में उसे पत्नी, माँ, सास एवं दादी जैसी महत्त्वपूर्ण भूमिकाएँ निभानी पड़ती हैं। यदि कदाचित् उसका स्वभाव अच्छा न हो, वह कर्कशा झगड़ालू या स्वार्थी हो तो परिवार की सम्पूर्ण सुख-शान्ति नष्ट हो सकती हैं। आज परिवारों में पाये जाने वाले मतभेद एवं प्रति-दिन के झगड़े-झंझटों में महिलाओं का अटपटे स्वभाव प्रधान कारण हैं। जिस परिवार की महिलाओं का स्वभाव अच्छा है, वहाँ का वातावरण स्वर्गतुल्य सुखद होता है। इसी कारण से कन्या के शालीन या सौम्य स्वभाव को उसका सबसे बड़ा गुण मानना चाहिए। हमारी राय में जिस लड़की का स्वभाव अच्छा न हो, वह चाहे कितने ही सम्पन्न या प्रति-ष्ठित परिवार की क्यों न हो, उसके साथ विवाह नहीं करना चाहिए तथा अच्छे स्वभाव वाली कन्या, चाहे वह एक निर्धन या सामान्य परिवार की ही हो, तो उससे विवाह करना आगे चलकर दीर्घकाल तक ज्यादा सुखदायक होता है।

जिस लड़की की कुण्डली में निम्नलिखित योगों में से कोई एक योग हो, उसका स्वभाव अच्छा होता है। अच्छे तथा शालीन स्वभाव सूचक

योगों में से कुछ प्रमुख योग इस प्रकार हैं—

(क) चतुर्थ स्थान में शुभग्रह हो, चतुर्थेश उच्चराशि, मित्र राशि या स्वराशि में हो तथा वह शुभग्रहों से युत या दृष्ट हो तो लड़की का स्वभाव सौम्य होता है।

(ख) चतुर्थेश बलवान् हो और वह दो शुभग्रहों के बीच में हो या शुभ ग्रहों से दृष्ट-युत हो तो स्त्री शालीन स्वभाव की होती है।

(ग) लग्न में गुरु, चतुर्थ में शुभग्रह तथा दशम में चतुर्थेश हो तो स्त्री का स्वभाव बड़ा मृदु और बर्ताव बड़ा स्नेहपूर्ण होता है।

(घ) सप्तम स्थान में स्थित चन्द्रमा पर गुरु की दृष्टि हो तो कन्या भोली एवं लज्जावती होती है।

(ङ) लग्नेश एवं चतुर्थेश बलवान् हों तथा चतुर्थ स्थान पर शुभग्रहों की दृष्टि हो तो स्त्री उदार एवं शालीन स्वभाव वाली होती है।

(च) बलवान् मंगल दशम स्थान में हो तथा चतुर्थ में शुभग्रह हो तो स्त्री धैर्यशाली होती है।

(छ) लग्नेश चतुर्थ में तथा चतुर्थेश लग्न में हो तो इस योग में उत्पन्न कन्या निष्कपट हृदयवाली एवं क्षमाशील होती है।

(ज) लग्न में बुध एवम् सप्तम में गुरु हो तो स्त्री हँसमुख एवम् उदार होती है।

(झ) लग्न में मिथुन या कन्या का नवांश हो तथा चतुर्थेश चतुर्थभाव में हो तो स्त्री हँसमुख एव प्रिय बोलने वाली होती है।

(ञ) चतुर्थेश एवं दशमेश एक दूसरे की राशि में हो तो स्त्री अभिमान रहित एवं शान्त स्वभाव वाली होती है।

(३) अच्छा भाग्य

स्त्री का चरित्र या भाग्य जीवन में कितने बड़े-बड़े उत्थान एवं पतन कर सकता है? इसके उदाहरणों से भारतीय इतिहास के पन्ने भरे पड़े हैं। जीवन में प्रगति या सफलता दिलाने में जितना महत्त्वपूर्ण योगदान भाग्य का होता है, उतना किसी अन्य का नहीं। न केवल दाम्पत्य जोवन,

अपितु मानव जीवन की समस्त गतिविधियाँ भाग्य से सर्वाधिक प्रभावित होती हैं। इसलिए भाग्य के विचार पर हमारे आचार्यों ने सदैव अधिक जोर दिया है।

ज्योतिष शास्त्र की मान्यता है कि संयुक्त परिवार की उन्नति में परिवार के प्रत्येक सदस्य का भाग्य कार्य करता है। यह सत्य है कि परिवार के सभी सदस्य आर्थिक एवं व्यावसायिक कार्यों से प्रत्यक्षत: सम्बद्ध नहीं होते। क्योंकि ये कार्य आयु, लिंग, विशेषज्ञता एवं परिस्थितियों की अपेक्षा रखते हैं। बच्चों एवं महिलाओं का आर्थिक तथा व्यावसायिक मोर्चे पर अग्रणी होकर कार्य न करने में यही कारण हैं। किन्तु फिर भी परिवार में जो अन्य लोग अग्रणी होकर कार्य कर रहे हों उन्हें सफलता या असफलता दिलाने में स्त्री एवं बच्चों का भाग्य निश्चित रूप से एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। अत: विवाह से पूर्व कन्या के भाग्य की परीक्षा कर लेनी चाहिए।

जिस कन्या की कुण्डली में निम्नलिखित योगों में से कोई एक योग हो, वह भाग्यवती होती है।

(क) जिसकी कुण्डली में नवमेश शुभग्रह से दृष्ट-युक्त हो तथा भाग्यस्थान में शुभग्रह बैठा हो तो स्त्री का भाग्य अच्छा होता है।[1]

(ख) भाग्येश सिंहासनांश में हो तथा उसको लग्नेश या दशमेश देखता हो तो स्त्री उदार एवं भाग्यवती होतो है।[2]

(ग) यदि चन्द्रमा, बुध एवं गुरु लग्न में हो तो स्त्री सौभाग्यवती होती है।[3]

(घ) शुभग्रह नवम स्थान में तथा पापग्रह सप्तम या अष्टम स्थान में हों तो वह स्त्री पति, पुत्र एवं वैभव का सुख प्राप्त करते हुए बहुत समय तक जोवित रहती है।[4]

(ङ) सप्तम स्थान में ३ या अधिक शुभग्रह हों तो स्त्री परम भाग्य-

---

१-२. जातक पारिजात अ० १४

३-४. तत्रैव—स्त्रीजातकाध्याय

वती या राजरानी होती है।[1]

(च) लग्न में चन्द्रमा एवं शुक्र हों तथा दोनों बलवान् हों तो स्त्री जीवन भर सुखी रहती है।[2]

(छ) लग्न में बुध, गुरु एवं शुक्र हों तो स्त्री गुणवती प्रभावशाली एवं यश प्राप्त करती है।[3]

(ज) बृहस्पति नवम, पंचम या केन्द्र में उच्च आदि राशियों में हो तो स्त्री मधुर स्वभाववाली, साध्वी, अच्छे पुत्र की माता, सुखी, गुणवती एवं दोनों कुलों का यश बढ़ानेवाली होती है।[4]

(झ) लग्न को ३ शुभग्रह देखते हों तो स्त्री कलावती, लाजवती, सौन्दर्यवती, पुत्रवती, धन एवं वैभव वाली तथा अपने पति की प्राण-वल्लभा होती है।[5]

(ञ) जिसकी कुण्डली में लग्न, पचम एवं नवम स्थान पर शुभग्रहों का प्रभाव हो वह स्त्री अत्यन्त भाग्यशालिनी होती है।[6]

(४) समुचित-शिक्षा

कन्या को विवाह के बाद पत्नी एवं माँ जैसी महत्त्वपूर्ण भूमिकाएँ निभानी होती हैं। जिनका यथोचित निर्वाह करने के लिए उसका सुशिक्षित होना आवश्यक है। पति एवं पत्नी दोनों परिवार की गाड़ी के दो पहिए माने गए हैं। यदि इन दोनों में से कोई एक ठीक रूप से काम न करे तो पारिवारिक जीवन कष्टमय बन सकता है। पति, बच्चे, परिवार एवं समाज के दायित्वों को निभाने के लिए स्त्री का शिक्षित एवं बुद्धिमान् होना आवश्यक है। आज के युग की परिस्थिति एवं बदलते जीवन-मूल्यों को देखते हुए स्त्री शिक्षा का महत्त्व और भी ज्यादा बढ़ गया है। अतः विवाह के लिए वधू का चुनाव करते समय उसकी शिक्षा पर ध्यान देना चाहिए।

सामान्यतया लड़की को देखकर या अन्य लोगों से पूछकर उसकी

१-६. जातक पारिजात—स्त्रीजातकाध्याय

तत्कालीन शैक्षणिक योग्यता की जानकारी की जा सकती है। किन्तु यदि उसकी शिक्षा समाप्त न हुई हो या विवाह के बाद भी उसकी पढ़ाई चलने की सम्भावना हो, तो उसकी कुण्डली से शिक्षा का विचार कर लेना चाहिए।

ज्योतिष शास्त्र के अनुसार शिक्षा का विचार अध्याय २ में किया जा चुका है। वहाँ जिन योगों के आधार पर वर की शिक्षा, योग्यता, बौद्धिक विकास एवं विशेषज्ञता का निर्णय किया गया है, उन्हीं योगों के आधार पर लड़की की शिक्षा, योग्यता एवं विशेषज्ञता आदि का विचार कर लेना चाहिए।

(५) पतिव्रता योग

पति की सेवा में तत्पर तथा उसके मनोनुकूल आचार एवं व्यवहार करने वाली स्त्री पतिव्रता कही जातो है। दाम्पत्य-सुख के लिए यह योग बहुत बड़ा गुण माना गया है। ऐसे भाग्यवान् बहुत कम लोग होते हैं, जिन्हें पतिव्रता पत्नी मिलती है। इसलिए ज्योतिष शास्त्र के आचार्यों ने इस योग को काफी महत्त्व दिया है।

इस योग का विचार पुरुष एवं स्त्री दोनों की कुण्डलो से किया जाता है। किस व्यक्ति को पतिव्रता स्त्री मिलेगी ? इसका विवेचन हम आगे दाम्पत्यसुख का विचार करते समय करेंगे। यहां हम केवल यह बतलाना चाहते हैं कि कौन-सी स्त्री पतिव्रता होगी ?

जिस कन्या या स्त्री की कुण्डली में निम्नलिखित योगों में से कोई एक योग हो, वह अपने पति को अपना सर्वस्व मानने वाली, उसकी सेवा में तत्पर तथा उसके मनोनुकूल व्यवहार करने वाली होती है।

(क) जिसकी कुण्डली में सप्तम स्थान में शुक्र के नवांश में मंगल हो तथा उसे शुभ ग्रह देखते हों तो इस योग में उत्पन्न स्त्री पति की सेवा में तत्पर रहती है।

(ख) जिसकी कुण्डली में सप्तम स्थान में गुरु एवं शुक्र दोनों हों तथा चतुर्थ स्थान में शुक्र हो वह स्त्रो पतिव्रता होती है।

(ग) लग्नेश एवं शुक्र साथ-साथ हों तथा इन पर गुरु की दृष्टि हो तो इस योग में उत्पन्न स्त्री अपने पति की आज्ञाकारिणी होती है।

(घ) सप्तमेश बलवान् होकर गुरु के साथ हो तथा चतुर्थेश दो शुभ-ग्रहों के बीच में हो तो इस योग में उत्पन्न स्त्री धार्मिक स्वभाव वाली तथा पतिव्रता होती है।

(ङ) सप्तमेश गुरु के साथ हो या सप्तम स्थान में गुरु हो और इस पर बुध या शुक्र की दृष्टि हो तो इस योग में उत्पन्न होने वाली स्त्री पति-परायणा होती है।

(६) सन्तति सुख

विवाह का प्रमुख उद्देश्य सन्तति-सुख ही माना गया है। अतः यदि सन्तान का सुख न मिले तो विवाह करना निष्फल मानना चाहिए। स्त्री की कुण्डली में वन्ध्या योग, काकवन्ध्या योग, मृतवत्सा योग, विषकन्या योग, सन्तति बाधा योग एवं गर्भपात योग आदि अनेक योग सन्तति-सुख के लिए हानिकारक होते हैं। इन सब योगों का विस्तारपूर्वक विवेचन प्रसंगवश अगले अध्याय में किया जायेगा।[1] यहाँ हम स्त्री की कुण्डली में मात्र सन्तति-सुख के योगों का विचार कर रहे हैं, जिन्हें कन्या की कुण्डली का प्रमुख गुण माना जाता है।

जिस लड़की या स्त्री की कुण्डली में निम्नलिखित योगों में से कोई एक योग हो वह योग्य एवं स्वस्थ पुत्रों की माता बनती है।

(क) यदि पंचमेश उच्चराशि, मित्रराशि या स्वराशि में लग्न, पंचम या नवम स्थान में बैठा हो वह शुभग्रहों से दृष्ट या युत हो तो सन्तान से सुख मिलता है।

(ख) पंचम स्थान में शुभग्रह बैठे हों तथा पंचमेश शुभग्रहों के साथ हो तो सन्तान से सुख मिलता है।

(ग) पुरुष ग्रह पंचमेश हो और वह बलवान् होकर पुरुषराशि के

---

१. देखिये—अध्याय ५

नवांश में हो तो विवाह के बाद शीघ्र पुत्र का जन्म होता है।

(घ) लग्नेश पंचम भाव में और पंचमेश लग्न में हो तथा इन दोनों में से किसी एक पर गुरु की दृष्टि हो तो विवाह के बाद शीघ्र ही पुत्र का जन्म होता है।

(ङ) पंचमेश नवम स्थान में और नवमेश पंचम स्थान में हो तथा इन पर पापप्रभाव न हो तो सन्तान भाग्यवान् होती है।

(च) पंचम स्थान में स्थित धनेश पर शुभग्रह या नवमेश की दृष्टि हो तो बच्चे भाग्यवान् होते हैं।

(छ) लग्नेश के साथ पंचमेश, सप्तम, नवम, दशम या एकादश स्थान में हो तथा पंचम स्थान पाप प्रभाव से मुक्त हो तो भाग्यवान् एवं विद्वान् सन्तान होती है।

(ज) पंचमेश स्त्री ग्रह हो और वह बलवान् होकर स्त्री राशि के नवांश में हो तो कन्याओं का जन्म होता है।

(झ) पंचम स्थान में समराशि में स्त्री-ग्रह हो तथा उस पर किसी स्त्री-ग्रह की दृष्टि हो तो कन्याएँ अधिक होती हैं।

(ञ) पंचमेश नवम में, नवमेश लग्न में और लग्नेश पंचम में हो तो बच्चे भाग्यशाली होते हैं।

अध्याय पंचम

वरणीय कन्या की कुण्डली के प्रमुख दोष

१. अरिष्ट या मृत्यु योग, २. रोगिणी योग, ३. व्यभिचारिणी योग, ४. दरिद्रता योग, ५. विधवा योग, ६. बन्ध्या योग, ७. काकवन्ध्या योग, ८. मृतवत्सा योग एवं ९. विषकन्या योग।

विवाह के लिए कन्या का चुनाव करते समय उसकी कुण्डलो के दोषों का सावधानीपूर्वक विचार कर लेना चाहिए। पिछले अध्याय में हम प्रत्यक्ष रूप से दिखलायी पड़ने वाले कन्या के गुण-दोषों का विचार कर चुके हैं। किन्तु कन्या की कुण्डली में कुछ ऐसे दोष भी होते हैं, जो दिखलाई तो नहीं देते, किन्तु दाम्पत्य सुख को नष्ट करने या दाम्पत्य जीवन में अनेक समस्याएँ उत्पन्न करने के कारण कहे जा सकते हैं। ऐसे ही कुछ प्रमुख दोषों का विवेचन इस अध्याय में किया जायेगा।

कन्या की कुण्डली में निम्नलिखित ९ दोष अनिष्ट कारक माने गये हैं, इनका विचार मेलापक से पहले कर लेना चाहिए और इन दोषों में से कोई भी दोष उसकी कुण्डली में दिखलाई पड़े तो सामान्यतया उस कन्या के साथ विवाह नहीं करना चाहिए। अथवा इन दोषों का परिहार या उपचार करने के बाद ही विवाह करना चाहिए। इन दोषों को महा-

दोष भी कहा जा सकता है। ये इस प्रकार होते हैं—१. अरिष्ट या मृत्यु योग, २. रोगिणी योग, ३. व्यभिचारिणी योग, ४. दरिद्रता योग, ५. विधवा योग, ६. वन्ध्या योग, ७. काक वन्ध्या योग, ८. मृतवत्सा योग एवं ९. विष कन्या योग।

(१) अरिष्ट या मृत्यु योग

कन्या की कुण्डली में अरिष्ट या मृत्यु-योग होना एक महादोष माना गया है। क्योंकि इस योग के प्रभाववश उसकी छोटी आयु में मृत्यु हो सकती है। वर या वधू में से किसी भी एक की मृत्यु दाम्पत्य जीवन के लिए एक अनिष्टतम घटना है, जो दाम्पत्य सुख को पूर्णरूपेण नष्ट कर देती है। इस विषय में कुछ अधिक कहने या तर्क देने की आवश्यकता नहीं है।

जिस प्रकार वर की कुण्डली में अल्पायु योग का विचार किया गया था, उसी प्रकार कन्या की कुण्डली में अल्पायु या शीघ्र मृत्यु के योगों का सावधानी पूर्वक विचार कर लेना चाहिए। इस विषय में कुछ योग हमारे अनुभव में आये हैं, जिनमें व्यक्ति की मृत्यु छोटी उम्र में हो जाती है। ये योग इस प्रकार हैं--

(क) अष्टमेश पापग्रह के साथ हो और लग्न पर पापप्रभाव हो तो छोटी उम्र में मृत्यु हो जाती है।

(ख) अष्टमेश एवं लग्नेश दोनों ६ठं स्थान में हों तथा लग्न एवं अष्टम भाव पर पापग्रहों का प्रभाव हो तो छोटी उम्र में मृत्यु होती है।

(ग) व्ययेश या अष्टमेश के साथ लग्नेश अष्टम स्थान में हो, तृतीयेश को पापग्रह देखते हों तो छोटी आयु में मृत्यु हो जाती है।

(घ) अष्टमेश लग्न में और लग्नेश त्रिकस्थान में हो तथा इस पर शुभग्रहों की दृष्टि न हो तो छोटी आयु में मृत्यु होती है।

(ङ) केन्द्र में पापग्रह हों, उन पर शुभग्रहों की दृष्टि न हो तथा लग्नेश निर्बल हो तो अल्पायु होती है।

(च) अष्टमेश अष्टम स्थान में हो तथा लग्नेश निर्बल हो तो अल्पायु

होती है।

(छ) पापग्रह आपोक्लिम स्थान में हो तो छोटी उम्र में मृत्यु हो जाती है।

(ज) लग्नेश एवं अष्टमेश दोनों षष्ठ या द्वादश स्थान में हों तो छोटी उम्र में मृत्यु हो जाती है।

(झ) पापग्रह त्रिकस्थानों में हों तथा लग्नेश निर्बल हो तो युवावस्था में मृत्यु हो जाती है।

(ञ) द्वितीय एवं द्वादश स्थान में पापग्रह हों तथा लग्नेश त्रिकस्थान में हो तो व्यक्ति की युवावस्था में मृत्यु हो जाती है।

इन योगों का विचार करते समय योग कारक ग्रहों के वल तथा उन पर पापप्रभाव का अवश्य ध्यान रखना चाहिए। यदि योग कारक ग्रह एवं स्थानों पर शुभ ग्रहों की दृष्टि हो अथवा उनके साथ शुभ ग्रह हों तो ये योग कुछ प्रभावहीन हो जाते हैं।

मृत्यु योग होने पर क्या करना चाहिए ?

यदि किसी कन्या की कुण्डली में छोटी आयु में मृत्यु होने का योग हो तो सर्वप्रथम उसकी स्पष्ट-आयु[1] का विचार कर लेना चाहिए। अध्याय ३ में वर्णित योगों के आधार पर उसकी मृत्यु का वर्ष जान लेना चाहिए।

इस प्रकार जिस वर्ष में उसकी मृत्यु होने की सम्भावना हो उस वर्ष तक कन्या का विवाह नहीं करना चाहिए। यदि उसका विवाह करना अनिवार्य ही हो तो किसी अल्पायु योग वाले लड़के से, जिसकी आयु इससे कुछ अधिक प्रतीत हो, विवाह कर देना चाहिए।

(२) रोगिणी योग

कन्या की कुण्डली में रोगिणी योग होना एक महत्त्वपूर्ण दोष है,

---

१. देखिए—बृहज्जातक, आयुर्दायाध्याय

जिसको उपेक्षा नहीं की जा सकती। जीवन के समस्त सुखों का आधार अच्छा स्वास्थ्य ही है। रोगिणी कन्या के साथ विवाह करने से न तो पूरा दाम्पत्य सुख ही मिल सकता है, और न ही गृहस्थी की व्यवस्था ठीक रह सकती है। इसलिए विवाह के लिए वधू का चुनाव करते समय उसके स्वास्थ्य का अच्छी तरह विचार कर लेना चाहिए।

विविध रोगों के योगों का विवेचन अध्याय ३ में किया जा चुका है। इन योगों के आधार पर कन्या के स्वास्थ्य की परीक्षा की जा सकती है। इसके साथ-साथ स्त्री रोगों एवं गुप्त रोगों का भी सावधानी से विचार कर लेना चाहिए। इस विषय में प्रमुख योग इस प्रकार हैं—

(क) पापग्रहों से युत या दृष्ट शनि त्रिकोण या व्यय-स्थान में हो तो स्त्री सदैव रोगिणी रहती है।

(ख) अष्टमेश त्रिकस्थान में हो तो स्त्री का स्वास्थ्य सदैव खराब रहता है।

(ग) लग्नेश ६ठे स्थान में हो तो स्त्री को अनेक रोग होते हैं।

(घ) शुक्र एवं मंगल सप्तम स्थान में हों तो वह स्त्री रोगों से पीड़ित रहती है।

(ङ) षष्ठ स्थान में शनि या मंगल हो उस पर सूर्य या राहु की दृष्टि हो तथा लग्नेश निर्बल हो तो लम्बे समय तक बीमारी चलती है।

(च) अष्टम स्थान में शुक्र, चन्द्रमा या मंगल हो तो गुप्त रोग होता है।

(छ) सप्तम स्थान में मंगल की राशि या उसका नवांश हो तथा उस पर शनि की दृष्टि हो तो स्त्री गुप्त रोगों से पीड़ित रहती है।

(ज) अष्टम स्थान में मंगल या शनि हो और उस पर नीच राशि या शत्रु राशिगत ग्रहों की दृष्टि हो तो स्त्री गुप्त रोगों से पीड़ित रहती है।

(झ) अष्टम स्थान में स्थित पापग्रहों पर षष्ठेश या पापग्रहों की दृष्टि हो तो स्त्री गुप्त रोगों से पीड़ित रहती है।

(ञ) पंचम स्थान में पापग्रह हों तथा पंचमेश त्रिकस्थान में हो तो

गर्भपात हो जाता है।

(ट) पंचम स्थान में जिस राशि का नवांश हो उस राशि पर पाप-ग्रहों की दृष्टि हो तो गर्भाशय की बीमारी होती है।

(ठ) पंचम स्थान में मंगल तथा अष्टम में पापग्रह होने पर मासिक-धर्म ठीक नहीं आता।

(ड) लग्न में सूर्य और सप्तम में शनि हो तो गर्भाशय कमजोर होता है।

(ढ) चतुर्थ या षष्ठ स्थान में शनि एवं मंगल दोनों हों तो गर्भ द्वार रोगग्रस्त होता है।

(ण) षष्ठेश एवं शनि ६ठे स्थान में तथा चन्द्रमा सप्तम स्थान में हों तो गर्भाशय रोगग्रस्त होता है।

(त) लग्न में गुरु और सप्तम में मंगल हो तो स्त्री पागल हो जाती है।

(थ) लग्न में शनि, द्वादश में सूर्य एवं पंचम या नवम स्थान में चन्द्रमा हो तो स्त्री पागल हो जाती है।

(द) क्षीण चन्द्रमा एवं शनि ये दोनों १२वें स्थान में हों तो उन्माद रोग होता है।

(ध) लग्न में सूर्य और सप्तम स्थान में मंगल हो तो प्रमेह रोग होता है।

(न) षष्ठ एवं सप्तम में पापग्रह तथा अष्टम में मंगल हो तो अश्मरी (पथरी) वन जाती है।

(प) चतुर्थ स्थान में नीच राशि का चन्द्रमा, षष्ठ स्थान में उच्च-राशि मंगल हो तथा लग्न में शनि हो तो रक्तचाप होता है।

(फ) सप्तम या द्वादश स्थान में लग्नेश एवं मंगल हो तो बवासीर हो जाती है।

(ब) लग्न में शनि एवं सप्तम में मंगल होने पर बवासीर हो जाती है।

(भ) षष्ठ स्थान में चन्द्रमा तथा लग्न में राहु हो तो हिस्टीरिया हो

जाता है।

(म) चन्द्र, मंगल एवं सूर्य ये तीनों लग्न या अष्टम में हों तो हिस्टीरिया के दौरे पड़ते हैं।

(य) शनि एवं चन्द्रमा दोनों साथ-साथ हों तथा उन पर मंगल की दृष्टि हो तो मृगी के दौरे पड़ते हैं।

(र) चन्द्रमा एवं सूर्य एक-दूसरे के नवांश में हों तो क्षय रोग (टी० बी०) होती है।

(ल) लग्न पर मंगल एवं शनि की दृष्टि हो तो खाँसी, श्वास एवं क्षय रोग होता है।

(३) व्यभिचारिणी योग

जिस कन्या की कुण्डली में व्यभिचार योग हो उसके साथ विवाह नहीं करना चाहिए। व्यभिचार समस्त अनर्थों की जड़ है। यह कुल की मर्यादा एवं यश को नष्ट करता है तथा पारिवारिक कलह एवं कभी-कभी हत्या या आत्महत्या का कारण बन जाता है। इसलिए इसे एक महादोष कहा गया है। व्यभिचारिणी स्त्री के साथ विवाह करने से दाम्पत्य जीवन सुखमय नहीं रह सकता। अतः दाम्पत्य सुख एवं अपना यश बनाये रखने वाले लोगों को चाहिए कि वे ऐसी कन्या से विवाह न करें। निम्नलिखित योगों में उत्पन्न स्त्री व्यभिचारिणी होती है—

(क) मंगल के नवांश में शुक्र तथा शुक्र के नवांश में मंगल हो तो स्त्री व्यभिचारिणी होती है।

(ख) चन्द्र, म .ल एवं शुक्र इनमें से कोई दो या ये तीनों सप्तम स्थान में हो तो स्त्री व्यभिचारिणी होती है।

(ग) लग्न में मेष, वृश्चिक, मकर या कुम्भ राशि में शुक्र एवं चन्द्रमा हों और इन पर पापग्रहों की दृष्टि हो तो वह स्त्री तथा उसकी माता दोनों ही व्यभिचारिणी होती हैं।

(घ) सप्तम स्थान में कर्क राशि में सूर्य एवं मंगल हों तो स्त्री व्यभिचारिणी होती है।

(ङ) लग्न, चतुर्थ, सप्तम, अष्टम एवं व्यय इन स्थानों में से किसी एक स्थान में पापग्रह के साथ मंगल हो तो स्त्री अपने पति को छोड़कर अन्य पुरुषों के साथ सम्भोग करती है।

(च) लग्न में विषम राशि हो तथा पुरुष ग्रह एवं चन्द्रमा, बुध एवं शुक्र बलवान् हों तो स्त्री का अनेक पुरुषों से सम्बन्ध होता है। वह प्रच्छन्न रूप से वेश्यावृत्ति करती है।

(छ) लग्न में मंगल की राशि में शुक्र का त्रिशांश हो तो स्त्री व्यभिचारिणी होती है।

(ज) शुक्र एवं मंगल एक-दूसरे की राशि में हों तो स्त्री दुराचारिणी होती है।

(झ) अष्टम स्थान में सूर्य तथा सप्तम में शुक्र हो तो स्त्री वेश्यावृत्ति अपना लेती है।

(ञ) यदि शुक्र से सप्तम स्थान में सूर्य या मंगल हो तो वह गुप्त रूप से पर-पुरुष के साथ सम्बन्ध रखती है।

(ट) सप्तम स्थान में राहु या केतु हो, सप्तमेश पापग्रहों के साथ हो तथा सप्तम पर पापग्रहों की दृष्टि हो तो स्त्री कुसंगति में फँसकर व्यभिचारिणी वन जाती है।

(ठ) लग्न एवं चन्द्रमा चरराशि में हों तथा वलवान् पापग्रह केन्द्र में हो तो वह अपनी कामपिपासा शान्त करने के लिए दुराचार करती है।

(ड) लग्न, चन्द्रमा एवं लग्नेश तीनों चर राशि में हों तथा इन पर पाप प्रभाव हो तो स्त्री विवाह से पूर्व अनेक लोगों के साथ रमण करती है।

(ढ) मंगल एवं शनि एक-दूसरे के नवांश में हों तो स्त्री दुराचार से धनार्जन करती है।

(ण) शुक्र एवं शनि एक-दूसरे के नवांश में हों तथा एक-दूसरे को देखते हों तो स्त्री अप्राकृतिक ढंग से कामशान्ति करती है।

(त) लग्न में शुक्र की राशि में शनि का नवांश हो तथा उस पर शुक्र या शनि की दृष्टि हो तो स्त्री अप्राकृतिक साधन से कामोत्तेजना को शान्त

करती है।

(४) दरिद्रता योग

दरिद्रता एक ऐसा भयंकर दोष है, जो समस्त सुखों की कल्पना को धराशायी कर देता है। इसलिए विवाह से पहले वधू का चुनाव करते समय उसकी कुण्डली में इस योग पर अवश्य ध्यान देना चाहिए। यदि कन्या की कुण्डली में दरिद्रता योग हो तो भले ही परिवार की आर्थिक स्थिति कितनी ही मजबूत क्यों न हो, वह परिवार पनप नहीं सकता। विवाह के बाद परिवार शनै. शनैः दरिद्रता की ओर अग्रसर हो जाता है।

यदि पति की कुण्डली में धनिक योग तथा पत्नी की कुण्डली में दरिद्रता योग हो तो पति पत्नी को खर्चा देना बन्द कर देता है अथवा वह बहुत नपा तुला खर्चा देता है, जिससे उसका हाथ तंग और जीवन दूभर हो जाता है। इस स्थिति में दाम्पत्य सम्बन्धों में कटुता आना स्वाभाविक है। तथा इस स्थिति में दाम्पत्य-सुख नहीं मिल पाता।

यदि पति एवं पत्नी दोनों की कुण्डली में दरिद्रता योग हो तो आजीवन दरिद्री रहने या भूखों मरने की नौबत आ सकती है। इस योग के प्रभाववश परिवार के सदस्यों का पेट पालन करने के लिए रूखी-सूखी रोटी जुटा पाना भी कठिन हो जाता है। इस स्थिति की भयंकरता एवं इसमें मिलने वाले क्लेशों की आप कल्पना कर सकते हैं।

यदि पुरुष की कुण्डली में दरिद्रता योग हो तथा स्त्री की कुण्डली में धनवान् या भाग्यवान् योग हो तो पुरुष के अकर्मण्य, निठल्ले साधन-विहीन या बेकार रहने पर भी स्त्री इस योग के प्रभाववश स्वयं प्रयास करके किसी तरह से अपने बल पर परिवार का पालन-पोषण करती रहे; अपनी चल या अचल सम्पत्ति से परिवार को चलाये या अपने प्रभाव से परिचितों एवं सम्बन्धियों के सहयोग से कुछ साधन जुटाए।

इन सब स्थितियों पर विचार कर यह कहा जा सकता है कि कन्या की कुण्डली में दरिद्रता योग होना एक महादोष है। विवाह से पूर्व वधू का चुनाव करते समय इस योग पर पूरा ध्यान देना चाहिए। अन्यथा

दाम्पत्य जीवन में खुशी की एक कली भी फल-फूल नहीं सकती।

दरिद्रता दायक योगों का विचार तीसरे अध्याय में किया जा चुका है। उन योगों के आधार पर वर एवं वधू दोनों की कुण्डली का विचार किया जा सकता है। वहाँ बतलाये गये १० योगों के अलावा कुछ और भी दरिद्रता दायक योग होते हैं, जो इस प्रकार हैं।[1]

(क) यदि धनेश ६, ८, या १२वें स्थान में हो तथा धन-स्थान पर पाप प्रभाव हो तो व्यक्ति निर्धन या दरिद्री होता है।

(ख) धन-स्थान में क्रूर-ग्रह हों तथा धनेश पापग्रहों के साथ हो तो संचित सम्पत्ति का नाश हो जाने से मनुष्य निर्धन हो जाता है।

(ग) लाभ-स्थान में पापग्रह हों तथा लाभेश पापग्रहों के मध्य में हो तो मनुष्य प्रयास करने पर भी आर्थिक साधन जुटा नहीं पाता।

(घ) धनेश पापग्रहों के साथ नीचराशि में या अष्टम स्थान में हो तथा उस पर राज्येश की दृष्टि हो तो राजदण्ड से धन नष्ट होने के कारण व्यक्ति दरिद्री हो जाता है।

(ङ) व्ययेश एवं धनेश एक दूसरे के स्थान में हों तो भी राजदण्ड या चोरी से धन नष्ट हो जाने से मनुष्य निर्धन हो जाता है।

(च) निर्बल लग्नेश पापग्रहों के साथ हो तथा व्यय-स्थान में सूर्य के साथ धनेश हो और उस पर पापग्रहों की दृष्टि हो तो बलपूर्वक धन का अपहरण हो जाता है।

(छ) व्ययेश पापग्रहों के साथ हो, व्यय-स्थान में पापग्रह हों तथा व्ययेश धनेश से बलवान् हो तो अनिष्ट कर्मों में धन नाश होने से वह दरिद्री हो जाता है।

(ज) व्ययेश पापग्रह हो, वह पापग्रहों के साथ नीच राशि या शत्रु

---

१. विस्तृत जानकारी के लिए देखिए—
(क) दैवज्ञाभरण
(ख) सर्वार्थचिन्तामणि
(ग) जातक तत्त्व

राशि में हो और धनेश तथा भाग्येश निर्बल हों तो मनुष्य दरिद्री हो जाता है।

(झ) धनकारक (गुरु) से २, ४ एवं ५वें स्थान में पापग्रह हो तो स्त्री दरिद्री होती है।

(ञ) द्वितीय स्थान में पापग्रह तथा दशम स्थान में शुभग्रह हो तो कठिनाई से रोजी-रोटी के साधन जुट पाते हैं।

(ट) भाग्येश व्यय-स्थान में एवं व्ययेश धन-स्थान में हो तो व्यक्ति अत्यन्त निर्धन होता है।

(ठ) केन्द्र में गुरु, चन्द्र एवं शनि हों तथा मंगल एवं गुलिक ५, ८ या १२वें स्थान में हो तो स्त्री अत्यन्त दरिद्री होती है।

(ड) सूर्य एवं चन्द्रमा दोनों कुम्भ राशि में हों तथा शेष ग्रह निर्बल या नीच राशि गत हों तो राजकुल की भी कन्या दरिद्रता प्राप्त करती है।

(ढ) बुध, मंगल, चन्द्र एवं शनि ये चारों नीचराशि में हों तथा शुक्र मकर में हो तो राजकुल की भी कन्या दरिद्रता एवं दीनता प्राप्त करती है।

(ण) नीचराशि का सूर्य त्रिकोण में तथा मंगल अष्टम में हो तो धनवान् या राजा की कन्या भी निर्धन हो जाती है।

(त) सूर्य एवं चन्द्रमा एक-दूसरे के नवांश में हो तो मनुष्य अपने जीवन में दरिद्रता एवं अभाव से ग्रस्त रहता है।

दरिद्रता-दायक अन्य योग

निम्नलिखित २१ योग दरिद्रता-दायक माने गये हैं—

१. षष्ठेश एवं लग्नेश का योग
२. षष्ठेश एवं धनेश का योग
३. षष्ठेश एवं तृतीयेश का योग
४. षष्ठेश एवं चतुर्थेश का योग
५. षष्ठेश एवं पंचमेश का योग
६. षष्ठेश एवं सप्तमेश का योग
७. षष्ठेश एवं भाग्येश का योग
८. षष्ठेश एवं लाभेश का योग
९. षष्ठेश एवं व्ययेश का योग
१०. व्ययेश एवं लग्नेश का योग
११. व्ययेश एवं धनेश का योग
१२. व्ययेश एवं तृतीयेश का योग
१३ व्ययेश एवं चतुर्थेश का योग
१४. व्ययेश एवं पंचमेश का योग

१५. व्ययेश एवं सप्तमेश का योग
१६. व्ययेश एवं अष्टमेश का योग
१७. व्ययेश एवं भाग्येश का योग
१८. व्ययेश एवं दशमेश का योग
१९. व्ययेश एवं लाभेश का योग
२०. षष्ठेश एवं दशमेश का योग
२१. षष्ठेश एवं अष्टमेश का योग

इन योगों को बनाने वाले ग्रहों में से षष्ठेश एवं व्ययेश बलवान् तथा अन्य ग्रह निर्बल हों तो ये योग अपना विशेष प्रभाव दिखलाते हैं। ये योग भाग्य-स्थान, लाभ-स्थान या पंचम-स्थान में हों तो अपना पूर्ण फल देते हैं। ये व्यय-स्थान में हों तो पौना (३/४) फल देते हैं। धन-स्थान में ये योग होने पर आधा फल देते हैं तथा शेष स्थान में ये योग चौथाई फल-दायक माने गये हैं।

(५) विधवा योग

कन्या की कुण्डली में विधवा योग होना महान् अनिष्ट का सूचक माना गया है। दाम्पत्य सम्बन्धों के प्रसंग में यह योग पति की मृत्यु का सूचक होने के कारण एक महादोष है। पति-पत्नी में किसी भी एक की मृत्यु हो जाने पर दाम्पत्य सुख की समस्त कल्पनाएँ धराशायी हो जाती हैं। विशेषकर हिन्दू समाज में विधवा का जीवन नरक तुल्य बन जाता है। इसलिए वैधव्य एक अभिशाप है, जो स्त्री के जीवन के सुखों एवं शान्ति को नष्ट कर देता है।

स्त्री के जीवन में वैधव्य से बढ़कर कोई दुःख नहीं हो सकता। यह योग दाम्पत्य-सुख को हमेशा-हमेशा के लिए समाप्त कर सकता है। अतः विवाह के लिए वधू का चुनाव करते समय इस दोष का अवश्य विचार कर लेना चाहिए।

ज्योतिष शास्त्र के अनुसार स्त्री की कुण्डली में सप्तम स्थान पति का स्थान माना गया है तथा अष्टम स्थान पति की मृत्यु का वैधव्य का स्थान होता है। दाम्पत्य जीवन में घटित होने वाले सुख एवं दुख का विचार प्रमुखतया इन्हीं दोनों स्थानों से होता है। अतः लग्न, चन्द्रलग्न एवं शुक्र से सप्तम तथा अष्टम स्थान पर पापग्रहों का प्रभाव होने पर

विधवा होने की सम्भावना बनती है।

जातक-ग्रन्थों[1] में विधवा होने के योगों का बड़े विस्तार से विवेचन किया गया है। उनमें से कुछ प्रमुख योग इस प्रकार हैं—

(क) यदि सप्तमेश एवं अष्टमेश दोनों पापग्रहों के साथ ६ठे एवं १२वें स्थान में हों तो स्त्री विधवा हो जाती है।

(ख) यदि दो या तीन पापग्रहों के साथ मंगल सप्तम या अष्टम स्थान में हो तो स्त्री विवाह के बाद शीघ्र विधवा हो जाती है।

(ग) सप्तमेश अष्टम स्थान में और अष्टमेश सप्तम स्थान में हो और वह पापग्रहों से दृष्ट या युत हो तो स्त्री निश्चित रूप से विधवा हो जाती है।

(घ) सप्तम स्थान में मंगल की राशि में राहु हो तथा मंगल त्रिक-स्थान में हो तो स्त्री निश्चित रूप से विधवा हो जाती है।

(ङ) सप्तम स्थान में केतु तथा पापग्रहों के साथ मंगल ८वें या १२वें स्थान में हो तो स्त्री विधवा हो जाती है।

(च) यदि लग्न, सप्तम एवं अष्टम स्थान में मंगल, शनि एवं राहु हों तो स्त्री विधवा हो जाती है।

(छ) सप्तम स्थान में मंगल की राशि में दो पापग्रहों के साथ राहु हो तो विवाह के बाद शीघ्र विधवा होने का योग बनता है।

(ज) लग्न एवं सप्तम में पापग्रह होने पर तथा इन पर शुभग्रहों का प्रभाव न होने पर विवाह के ७ वर्षों के भीतर स्त्री विधवा हो जाती है।

(झ) द्वितीय एवं सप्तम स्थान में पापग्रह हों तथा चन्द्रमा से षष्ठ एवम् अष्टम में पापग्रह हों तो विवाह से ८वें वर्ष में पति की मृत्यु हो

---

१. देखिये—(क) बृहज्जातक
(ख) सारावली
(ग) जातक पारिजात
(घ) जातक तत्त्व

जाती है।

(ञ) सप्तम एवं अष्टम स्थान पर पाप प्रभाव हो तथा ६ठे या ८व स्थान में चन्द्रमा हो तो आठवें वर्ष में पति की मृत्यु हो जाती है।

(ट) बुध सप्तमेश होकर पापग्रहों के साथ नीच या शत्रु राशि में अष्टम स्थान में बैठा हो और उसे पापग्रह देखता हो तो स्त्री अपने पति की हत्या कर कुल का नाश कर देती है।

(ठ) चन्द्रमा दो पापग्रहों के मध्य में हो तथा उससे ७वें एवं ८वें स्थान में पापग्रह हों तो स्त्री का पति मर जाता है।

(ड) चन्द्रमा के साथ राहु, शुक्र के साथ मंगल एवं अष्टम स्थान में पापग्रह होने पर स्त्री विधवा हो जाती है।

(ढ) लग्न में शनि और उससे ८वें या १२वें स्थान में पापग्रह के साथ मंगल हो तो स्त्री विधवा हो जाती है।

(ण) लग्न में सूर्य एवं सप्तम में मंगल होने पर स्त्री अवश्य ही विधवा होती है।

(त) लग्न में चन्द्रमा एवं सप्तम में मंगल हो, इनमें से किसी एक पर अष्टमेश की दृष्टि हो तो स्त्री विधवा हो जाती है।

(थ) सप्तम में बुध शनि हो तो स्त्री विधवा एवं व्यभिचारिणी होती है।

(द) सप्तम स्थान में स्थित मंगल पर पापग्रहों की दृष्टि हो तो स्त्री छोटी आयु में विधवा हो जाती है।

(ध) षष्ठेश एवं अष्टमेश पापग्रहों के साथ षष्ठ या अष्टम स्थान में हो तो स्त्री युवावस्था में विधवा हो जाती है।

(न) सप्तमेश त्रिक स्थान में और अष्टमेश सप्तम में हो तथा इनमें से किसी एक पर पापग्रह की दृष्टि हो तो स्त्री विवाह के शीघ्र बाद विधवा हो जाती है।

विधवा योग का परिहार

जब जन्म लग्न या चन्द्र लग्न से सप्तम स्थान में शुभग्रह या उसका

स्वामी बैठा हो तो विधवा योग अपना प्रभाव नहीं दिखला पाता।

त्रिकोण या केन्द्र में शुभग्रह, त्रिषडाय में पापग्रह तथा सप्तम स्थान में सप्तमेश होने पर भी वैधव्य दोष दूर हो जाता है।

विधवा योग को बनाने वाले ग्रहों तथा सप्तम स्थान पर शुभग्रहों की दृष्टि हो तो भी विधवा योग का दोष नष्ट हो जाता है।

विधवा योग में उत्पन्न कन्या का विधुर योग या दारहा योग में उत्पन्न पुरुष के साथ विवाह करने से विधवा होने की सम्भावना दूर हो जाती है।

विधवा योग में उत्पन्न कन्या का विवाह करें या नहीं ?

जिस कन्या की कुण्डली में विधवा योग हो, उसका विवाह करना चाहिए या नहीं ? इस विषय में हमारी राय है कि यदि उस कन्या की कुण्डली में विधवा योग का परिहार बनता हो तो उसका विवाह किया जा सकता है। और यदि उक्त योग कारक ग्रह निर्बल हों तो किसी दीर्घायु योग वाले लड़के के साथ उसका विवाह कर देना चाहिए।

यदि कन्या की कुण्डली में वैधव्य योग का परिहार न मिलता हो अथवा योग कारक ग्रह निर्बल न हों तो विवाह से पूर्व उस कन्या का 'विष्णु प्रतिमा' के साथ अश्वत्थ के साथ या कुम्भ के साथ विधिवत्[1] विवाह करना चाहिए, तथा कन्या से सावित्री व्रत करवाना चाहिए। फिर उसका विवाह किसी दीर्घायु योग वाले लड़के से करना चाहिए। इस प्रकार पुरुष के साथ उसका दुबारा विवाह होने से वैधव्य दोष दूर हो जाता है। यह सब न करने से उसके जीवन में वैधव्य की सम्भावना रहती है।

---

१. देखिए—(क) मुहूर्त चिन्तामणि-पीयूषधारा-विवाह प्रकरण
(ख) धर्म सिन्धु
(ग) ब्रह्मकर्म समुच्चय

(६) वन्ध्या योग एवं सन्तानहीन योग

जिस स्त्री में प्रजनन क्षमता नहीं होती वह वन्ध्या कहलाती है। विवाह या दाम्पत्य सम्बन्धों का प्रमुखतम उद्देश्य स्वस्थ एवं सुखी सन्तान को जन्म देना है। वन्ध्या स्त्री के साथ विवाह करने से इस उद्देश्य की पूर्ति नहीं होती। अतः विवाह निष्फल हो जाता है।

पति पत्नी में से किसी एक का सन्तानोत्पत्ति के अयोग्य होना दाम्पत्य-सुख की हानि कर सकता है। इस योग के प्रभाव को सन्तति योग वाले पुरुष के साथ विवाह करके भी दूर नहीं किया जा सकता। तात्पर्य यह है कि वन्ध्या योग वाली कन्या का सन्तान योग वाले पुरुष के साथ विवाह करने पर भी सन्तान नहीं होती और इस स्थिति में जीवन भर सन्तान का अभाव खटकता रहता है। यह अभाव अनेक बार पतिपत्नी में कलह का कारण बन जाता है तथा उन दोनों के सम्बन्धों में कड़वाहट पैदा कर देता है। अतः विवाह से पहले कन्या की कुण्डली में इस दोष का ध्यानपूर्वक विचार कर लेना चाहिए।

सन्तानहीन योग में या तो सन्तान होती नहीं है, गर्भावस्था में ही वह नष्ट हो जाती है अथवा सन्तान होकर भी मर जाती है, इस प्रकार इस योग का प्रभाव भी वन्ध्या योग के समान ही होता है। यहाँ हम इन योगों पर संक्षेप में प्रकाश डालना चाहेंगे।

(क) बन्ध्या योग

(अ) जिस स्त्री की कुण्डली में पंचम-स्थान में ३ पापग्रह हों और उनको उनका शत्रु ग्रह देखता हो तो स्त्री वन्ध्या होती है।

(ब) लग्न एवं चन्द्रलग्न से पंचम एवं नवम स्थान में पापग्रह हों तथा उन पर शुभग्रहों की दृष्टि न हो तो स्त्री वन्ध्या होती है।

(स) लग्न, पंचम, नवम स्थान एवं गुरु इन चारों पर पापप्रभाव होने पर स्त्री वन्ध्या होती है।

(द) अष्टम स्थान में स्वराशि में सूर्य या शनि हो तो स्त्री वन्ध्या होती है।

(र) तृतीयेश लग्न, तृतीय, पंचम या द्वादश-स्थान में हो और पंचमेश षष्ठस्थान में हो तो स्त्री वन्ध्या होती है।

(ख) गर्भपात

(क) जिस स्त्री की कुण्डली में लग्न में शनि एवं मंगल हों उसके गर्भ नष्ट हो जाते हैं।

(ख) लग्न में शनि या मंगल की राशि में चन्द्रमा हो और उसे पाप-ग्रह देखते हों तो बार-बार गर्भपात हो जाता है।

(ग) पंचम एवं सप्तम स्थान में सूर्य एवं राहु हो तो निश्चित रूप से गर्भपात हो जाता है।

(घ) पंचमेश व्यय-स्थान में और व्ययेश पंचम में हो तथा इनमें से किसी भी एक पर पापग्रह की दृष्टि हो तो गर्भपात होता है।

(ङ) अष्टम स्थान में शुभग्रह तथा पंचम एवं एकादश में पापग्रह हों तो गर्भपात होता है।

(च) सप्तम स्थान में शनि मंगल तथा पंचमेश त्रिकस्थान में हो तो गर्भपात होता है।

(ग) सन्तति बाधा एवं उसके कारण

(१) पंचम स्थान में स्थित राहु मंगल की राशि में हो या उस पर मंगल की दृष्टि हो तो सर्पशाप के कारण सन्तान नहीं होती।

(२) पंचम भाव में स्थित शनि पर चन्द्रमा की दृष्टि हो और पंचमेश राहु के साथ हो तो सर्प दोष के कारण सन्तान नहीं होती।

(३) गुरु राहु के साथ हो, पंचमेश निर्बल हो तथा लग्नेश मंगल के साथ हो तो सर्पशाप वश सन्तान नहीं होती।

(४) गुरु राहु के साथ हो, लग्न में राहु एवं त्रिक स्थान में पंचमेश हो तो सर्पशाप से सन्तान नहीं होती।

(५) पंचमेश बुध, मंगल के साथ उसी के नवांश में हो तथा लग्न में राहु एवं गुलिक हो तो सर्पशाप से सन्तान नहीं होती।

(६) पंचम स्थान में स्वराशि में स्थित मंगल पर बुध एवं राहु की दृष्टि हो तो सर्पशाप से सन्तान नहीं होती।

(७) लग्नेश राहु के साथ, पंचमेश मंगल के साथ हो तथा गुरु पर राहु की दृष्टि हो तो सर्पशाप से सन्तान नहीं होती।

(८) पंचमेश सूर्य त्रिकोण में पापग्रहों के बीच में हो तो पितृ शाप से सन्तान नहीं होती।

(९) पंचम स्थान में नीच का सूर्य शनि के नवांश में हो और वह पापग्रहों के मध्य में हो तो पितृशाप से सन्तान नहीं होती।

(१०) पंचम स्थान में सिंह राशि में सूर्य एवं गुरु हों तथा उन पर पापग्रहों की दृष्टि हो तो पितृशाप से सन्तान नहीं होती।

(११) अष्टम स्थान में सूर्य एवं पंचम में शनि हो तथा पंचमेश राहु के साथ हो तो पितृशाप से सन्तान नहीं होती।

(१२) व्ययेश लग्न में, अष्टमेश पंचम में तथा दशमेश अष्टम में हो तो पितृशाप से सन्तान नहीं होती।

(१३) पंचमेश चन्द्रमा नीच राशि में या दो पापग्रहों के बीच में हो तथा चतुर्थ एवं पंचम स्थान में पापग्रह हों तो मातृशाप से सन्तान नहीं होती।

(१४) पंचमेश चन्द्रमा या तो राहु, या शनि अथवा मंगल के साथ हो तो मातृशाप से सन्तान नहीं होती।

(१५) चतुर्थेश मंगल हो वह राहु एवं शनि के साथ हो और लग्न में सूर्य एवं चन्द्रमा हों तो मातृशाप से सन्तान नहीं होती।

(१६) चतुर्थेश अष्टम में पंचमेश एवं लग्नेश षष्ठ में तथा दशमेश एवं षष्ठेश लग्न में हो तो मातृशाप से सन्तान नहीं होती।

(१७) राहु, सूर्य, मंगल एवं शनि यथाक्रमेण ५, १, ८ एवं ६ स्थानों में हों तथा लग्नेश त्रिकस्थान में हो तो मातृशाप से सन्तान नहीं होती।

(१८) राहु, मंगल एवं गुरु तीनों त्रिकस्थानों में हों तथा पंचम भाव में चन्द्रमा एवं शनि हों तो मातृशाप से सन्तान नहीं होती।

(१९) षष्ठ स्थान में स्थित शनि पर सूर्य, चन्द्रमा एवं बुध की दृष्टि

हो तथा लग्न को पापग्रह देखते हों तो कुलदेवता के कोप से सन्तान नहीं होती।

(२०) शनि की राशि में स्थित सूर्य पर पापग्रहों की दृष्टि हो तो कुलदेव के दोष से सन्तान नहीं होती।

(२१) पंचम स्थान में शनि की राशि में सूर्य हो और लग्न में पापग्रहों का वर्ग हो तो कुल देवता के दोष से सन्तान नहीं होती।

इस प्रकार इन योगों के आधार पर सन्तान न होने के कारण को जानकर उस देवता की प्रसन्नता के लिए विधिवत् हवन एवं शान्ति आदि उपाय करने पर सन्तान की बाधा दूर हो जाती है।

(७) काक वन्ध्या योग

काकवन्ध्या योग में स्त्री के जीवन में केवल एक बार सन्तान होती है। एक मात्र सन्तान का होना भी एक प्रकार का दोष माना गया है। एकमात्र सन्तान अधिक लाड़-प्यार या ध्यान रखने के कारण प्रायः अधिक कष्ट भी देती है। अतः "एष्टव्या वहवो पुत्राः" अनेक पुत्रों की कामना रखने का सिद्धान्त प्राचीन काल से ही प्रचलित हुआ। काकवन्ध्या योगों में से प्रमुख इस प्रकार हैं—

(अ) अष्टम स्थान में बुध हो तो स्त्री काकवन्ध्या होती है।

(व) अष्टम स्थान में चन्द्रमा एवं बुध दोनों हों तो स्त्री काकवन्ध्या होती है।

(स) अष्टम स्थान में सूर्य एवं शनि दोनों हों तो स्त्री काकवन्ध्या होती है।

काकवन्ध्या योग का परिहार

काक वन्ध्या योग होने पर यदि स्त्री की कुण्डली में पंचम एवं अष्टम स्थान पर शुभग्रहों की दृष्टि हो तो यह योग निष्फल हो जाता है तथा फिर इस योग के रहने पर भी एकाधिक सन्तान होती हैं।

(८) मृतवत्सा योग

मृतवत्सा योग भी एक महान् दोष माना गया है। इस योग में सन्तान अवश्य होती है किन्तु वह जीवित नहीं रहती। इस प्रकार बार-बार सन्तान का होना और मर जाना एक ऐसी दुःखद परिस्थिति को उत्पन्न कर देता है, जो परिवार के वातावरण को दुःखमय या शोकमय बना देती है।

पहले तो सन्तान का न होना ही अपने आप में एक मानसिक आघात है। और यदि माता-पिता के सम्मुख बार-बार सन्तान की मृत्यु हो तो इससे बढ़कर और गहरा आघात क्या हो सकता है ? अतः इस आघात से बचने के लिए विवाह से पहले ही कन्या की कुण्डली में इस योग का विचार कर लेना चाहिए।

जिस स्त्री की कुण्डली में निम्नलिखित योगों में से कोई एक योग हो, उसकी सन्तान जीवित नहीं रहती—

(क) तृतीयेश, लग्न, तृतीय, पंचम या व्यय-स्थान में हो तो या तो सन्तान होती नहीं और हो जाय तो जीवित नहीं रहती।

(ख) पंचमेश एवं दशमेश पापग्रहों की राशि में पापग्रहों के साथ हों तो स्त्री जीवन भर पुत्रशोक से हाहाकार करती है।

(ग) पंचम स्थान में मंगल, एकादश में पापग्रह तथा त्रिकस्थान में पंचमेश हो तो सन्तान जीवित नहीं रहती।

(घ) पंचम-स्थान में मकर या मीन राशि में गुरु हो तो स्त्री पुत्रशोक में डूबी रहती है।

(ङ) पंचम, अष्टम एवं द्वादश स्थान में पापग्रह हों तो पुत्र-सन्तान जीवित नहीं रहती।

(च) लग्न में चन्द्रमा हो, सप्तम में शनि या मंगल हो और चतुर्थ स्थान में सभी पापग्रह हों तो पुत्र के जीवित न रहने से वंश-विच्छेद की सम्भावना बन जाती है।

(छ) लग्न, पंचम, अष्टम एवं द्वादश स्थान में पापग्रह हों तो सन्तान

जोवित न रहने से वंश नष्ट होने की नौबत आ जाती है।

(ज) प्रकाशावस्था का सूर्य पंचम स्थान में हो तो जितने बच्चे होते हैं वे सब मर जाते हैं।

(झ) पंचम स्थान में शत्रु या नीच राशि में सूर्य हो तो मृत सन्तान का जन्म होता है।

(ञ) पंचम एवं नवम स्थान में पापग्रह हो, लग्न में क्षीण चन्द्रमा हो तथा गुरु अस्त हो तो समस्त उत्पन्न पुत्र मर जाते हैं।

(६) विष कन्या योग

विष कन्या योग वाली लड़की का जीवन बड़ा ही दुर्भाग्यपूर्ण होता है। उसके या तो एक ही सन्तान होती है अथवा उसकी सन्तानें हो-होकर मर जाती हैं। वह जीवन भर धनहीन एवं दीन हीन जैसा जीवन व्यतीत करती है। यदि उसका विवाह सम्पन्न परिवार में या सुयोग्य लड़के के साथ कर भो दिया जाय, तो पति के साथ मधुर सम्बन्ध न होने के कारण उसे बारम्वार कष्ट उठाने पड़ते हैं।

यदि ज्योतिष शास्त्र की दृष्टि से इस योग पर विचार किया जाय तो इस योग में काक वन्ध्या, मृतवत्सा एवं दारिद्रय योग जैसे ३ महादोषों का समवेत प्रभाव दिखलाई देगा। ये तीनों दोष पृथक्-पृथक् रूप में जो प्रभाव डालते हैं, वह सब प्रभाव अकेला विषकन्या योग डाल सकता है। यही कारण है कि इस योग को इतना भयंकर माना गया है। इसलिए विवाह से पहले वधू का चुनाव करते समय इस दोष का ध्यानपूर्वक विचार कर लेना चाहिए।

यह योग प्रायः पाँच प्रकार का होता है—

(क) जिस लड़की का जन्म रविवार के दिन, द्वितीया तिथि एवं शत-भिषा नक्षत्र में हो वह कन्या विषकन्या कहलाती है।

(ख) जिसका जन्म मंगलवार के दिन, सप्तमी तिथि, एवम् आश्लेषा या विशाखा नक्षत्र में जन्म हो वह कन्या विषकन्या होती है।

(ग) जिसका जन्म शनिवार के दिन, द्वादशी तिथि एवं कृत्तिका नक्षत्र

में हो वह कन्या विषकन्या कहलाती है।

(घ) जिसको कुण्डली में पंचम स्थान में सूर्य और लग्न में मंगल हो वह विषकन्या होती है।

(ङ) जिसकी कुण्डली में पंचम स्थान में शनि एवं लग्न में सूर्य हो वह लड़की विषकन्या कहलाती है।

विषकन्या योग का परिहार

विषकन्या योग होने पर लड़की की कुण्डली में इसके परिहार को भी देख लेना चाहिए। जन्म-लग्न एवं चन्द्र-लग्न से सप्तम-स्थान पर शुभ प्रभाव होने से इस योग का परिहार हो जाता है। यदि लग्न से सप्तम भाव में शुभ ग्रह या सप्तमेश हो तो यह दोष दूर हो जाता है। चन्द्र लग्न तथा उससे सप्तम-स्थान इन दोनों में शुभग्रह होने पर भी यह दोष प्रभाव हीन हो जाता है।

विषकन्या का उपाय

यदि किसी लड़की की कुण्डली में विषकन्या योग हो तथा उसका परिहार न बनता हो तो इस दोष के प्रभाव को कम करने के लिए वट-सावित्री व्रत करवाना चाहिए। फिर वट के साथ उसका विवाह करके किसी सन्तान एवं दीर्घायु योग वाले लड़के के साथ उसका विवाह करना चाहिए। ऐसा करने से यह दोष प्रभावहीन हो जाता है, अन्यथा यह दोष दाम्पत्य जीवन में अनेक प्रकार के कष्ट उत्पन्न करता है।

योगों के विचार के समय ध्यान देने योग्य बातें

वर एवं वधू की परीक्षा उनके गुण एवं दोषों के आधार पर की जाती है। ये सभी गुण-दोष प्रायः योगों के आधार पर माने गये हैं। अतः योगों का विचार सावधानी पूर्वक करना चाहिए।

वर एवं वधू की कुण्डली में स्वास्थ्य, शिक्षा, भाग्य, आयु, मृत्यु एवं दरिद्रता आदि के योग प्रायः समान होते हैं। किन्तु सन्तान, सन्तति बाधा नपंसक, वन्ध्या आदि योग का विचार वर-वधू की कुण्डली में अलग-अलग

करना चाहिए। स्त्री के स्वभाव एवं सौभाग्य का विचार उसी की कुण्डली से होता है। किन्तु पुरुष के भाग्य पर कन्या के भाग्य का भी प्रभाव पड़ता है।

हमारी राय में सन्तान, भाग्य, सौभाग्य एवं दाम्पत्य-सुख का विचार वर-वधू दोनों की कुण्डली से करना चाहिए। किन्तु स्वास्थ्य, शिक्षा, आयु, मृत्यु, स्वभाव एवं चरित्र का विचार पृथक्-पृथक् रूप से दोनों की कुण्डली देखकर अलग-अलग करना चाहिए।

योगों के विषय में एक और बात ध्यान रखने योग्य यह है कि जिन ग्रहों के कारण कोई योग बनता हो, उन ग्रहों को स्पष्ट कर तथा भावों को भी स्पष्ट कर ग्रहों के बल तथा उनकी यथार्थ स्थिति की जानकारी कर लेनी चाहिए। क्योंकि निर्बल या अनपेक्षित भाव में या सन्धि में स्थित ग्रह अपना फल नहीं देते। इस प्रकार इन सब बातों का ध्यान-पूर्वक विचार कर निर्णय लेना चाहिए।

अध्याय षष्ठ

मेलापक विचार की आवश्यकता

मेलापक क्या है ? मेलापक के भेद, नक्षत्र मेलापक में प्रमुख रूप से विचारणीय बातें—१. वर्ण विचार, २. वश्य विचार, ३. तारा विचार, ४. योनि विचार, ५. ग्रह मैत्री विचार, ६. गण विचार, ७. भकूट विचार एवं ८. नाड़ी विचार; मेलापक में कुल गुण की सरल रीति; वर्ग विचार नक्षत्र, मेलापक का निर्णय ।

मेलापक विचार की आवश्यकता

पिछले अध्यायों में प्रतिपादित रीति से विवाह के योग्य वर एवं वधू का भलीभाँति विचार कर इन दोनों का मेलापक मिलाना चाहिए। दम्पति की प्रकृति, मनोवृत्ति, अभिरुचि तथा स्वभावगत अन्य विशेषताओं में कितनी समानता है ? यह हम नक्षत्र मेलापक से जान सकते हैं। जिन लोगों की प्रकृति, मनोवृत्ति एवं अभिरुचि में समानता हो ऐसे लोगों में मित्रता एवं सहज प्रेम होता है। तथा भिन्न प्रकृति एवं अभिरुचि के लोग परस्पर शत्रु, आलोचक या एक दूसरे से घृणा करते हैं। अतः प्रणय या दाम्पत्य सम्बन्धों में स्थिरता एवं सरसता के लिए वर-वधू का मेलापक अनिवार्य रूप से विचारणीय होता है।

कुछ लोग यह कह सकते हैं कि ज्योतिषियों द्वारा मेलापक मिलाने

के बाद किये गये विवाह भी बहुधा असफल होते देखे गये हैं। अनेक दम्पतियों में वैचारिक मतभेद या वैमनस्य रहता है। अनेक युगल गृह-कलह से परेशान होकर तलाक ले लेते हैं, तथा अनेकों लोग धनहीन, सन्तानहीन या प्रेमहीन होकर बुझे मन से जीवन की गाड़ी को खींचते या ढकेलते देखे जाते हैं। ऐसी स्थिति में यह कैसे कहा जा सकता है कि मेलापक का विचार करने के बाद विवाह करना सुखमय दाम्पत्य जीवन की गारण्टी है?

वस्तुत: इस प्रकार की शंकाएँ अनेक लोगों के मन में रहती हैं। तथा अनेक बार यह प्रश्न अध्यापन के समय कक्षा में मेरे सामने आया है। अत: मेलापक का विचार करने से पूर्व इसके बारे में पाठकों को यथार्थ स्थिति की जानकारी कराना आवश्यक है। यह ठीक है कि ज्योतिषी द्वारा मेलापक मिलवाने के बाद विवाह करने पर भी काफी लोगों का दाम्पत्य जीवन आज सुखमय नहीं है। इसके कुछ कारण हैं, जिनमें से प्रमुख निम्नलिखित हैं—

(१) प्रचलित नाम से मेलापक का विचार करना

बहुधा देखा जाता है कि जन्मपत्री न होने के कारण आमतौर पर लोग लड़के एवं लड़की के नामों से ही मेलापक का विचार कराकर अपने कर्तव्य की इतिश्री कर देते हैं। इस स्थिति में किया गया मेलापक तथा उसका निर्णय पूर्णरूपेण तथ्य विहीन एवम् अयथार्थ मानना चाहिए। कारण यह है कि एक व्यक्ति के अनेक नाम होते हैं। उदाहरण के तौर पर एक व्यक्ति का घर का नाम कुछ और, स्कूल का कुछ और हो सकता है। उसी व्यक्तिका लिखने पढ़ने का नाम (पैन नेम) या संक्षिप्त नाम इन दोनों से भिन्न हो सकता है। इस स्थिति में उसके किस नाम से मेलापक का विचार किया जाय? वास्तविकता यह है कि ग्रह मेलापक का विचार व्यक्ति के किसी भी नाम से नहीं हो सकता। मंगली आदि दोष व्यक्ति की जन्म-कुण्डली में होते हैं, न कि उसके नाम में। अत: व्यक्ति के जन्म-नाम, प्रचलित नाम या उपनाम मात्र की जानकारी से मेलापक का

विचार करना सर्वथा अशास्त्रीय एवं तर्क विहीन है। नाम की जानकारो से मेलापक से पूर्व विचारणीय वातों (अल्पायु योग, नपुंसक योग, भिक्षु योग, दरिद्री योग, चरित्रहीन योग, वन्ध्या योग एवं कुलटा योग आदि) के वारे में भी कोई निर्णय नहीं लिया जा सकता। यही कारण है कि केवल नाम से मेलापक का विचार करने के बाद विवाह करने से लोगों का दाम्पत्य जीवन सुखमय दिखलाई नहीं देता। अतः मेलापक का विचार सदैव जन्म-नक्षत्र एवं जन्म-कुण्डली के आधार पर ही करना चाहिए।

(२) जन्म-कुण्डली का ठीक न होना

आज कल अधिकांश कुण्डलियां ठीक ठीक रूप से बनी न होने के कारण गलत होती हैं। कभी-कभी माँ-बाप अनुमानित समय से कुण्डली बनवा लेते हैं। कुछ ज्योतिषी स्टैण्डर्ड टाइम एवं लोकल टाइम के अन्तर का ठीक संस्कार नहीं करते तथा कुछ अन्य लोग किसी भी पंचांग की लग्न सारिणी से लग्न देखकर कुण्डली खींच देते हैं। इस प्रकार कुण्डलियाँ गलत बन जाती हैं। इन गलत कुण्डलियों से मेलापक का विचार करने के कारण सुखमय दाम्पत्य जीवन की कल्पना धूमिल हो जाती है। इस स्थिति से बचने के लिए लोगों को चाहिए कि वे जन्म-तिथि, जन्म-समय एवं जन्म-स्थान इन तीनों की जानकारी देकर किसी सुयोग्य विद्वान् से कुण्डलो बनवायें। उसके बाद ही मेलापक का विचार करायें।

(३) जिस किसी से भी मेलापक का निर्णय करा लेना

आज ज्योतिष कुछ ऐसे लोगों के हाथों में फँस गया है, जिसको ज्योतिष शास्त्र की यथार्थ जानकारी तो क्या प्रारम्भिक बातें भी ठीक-ठीक रूप से पता नहीं है। ज्योतिष शास्त्र से अनभिज्ञ ज्योतिषियों की संख्या हमारे देश में सर्वाधिक है। यद्यपि दो-चार प्रतिशत व्यक्ति ज्योतिष शास्त्र के अधिकारी विद्वान् भी हैं। किन्तु मेलापक का कार्य करने

वाले लोगों में अधिकांश लोग इस शास्त्र की पूरी जानकारी नहीं रखते। जो लोग इस शास्त्र के अच्छे ज्ञाता या अधिकारी विद्वान् हैं सामान्यतया लोग उनके पास पहुंच नहीं पाते तथा ये विद्वान् भी अपने स्तर से उतर कर कार्य नहीं करते। इन्हीं कारणों से मेलापक का निर्णय अनेक नीम-हकीम ज्योतिषियों द्वारा हो जाता है।

वरवधू की कुण्डलियों का मेलापक करना या विधि मिलाना एक उत्तरदायित्व पूर्ण कार्य है। आज ज्योतिषी इसे अधिकतम ५ मिनिट में पूरा कर देता है। वह वर एवं कन्या के जन्म-नक्षत्रों को देखकर मेलापक-सारिणी से गुण देख लेता है। यदि गुण १८ से अधिक हुए तो मेलापक ठीक और यदि गुण १८ से कम हुए तो मेलापक नेष्ट घोषित कर दिया जाता है। इसके वाद वह वर एवं कन्या की कुण्डली में मंगल की लग्न पर दृष्टि दौड़ाता है। यदि दोनों की कुण्डली में मंगल लग्न, चतुर्थ, सप्तम, अष्टम या द्वादश में से किसी स्थान पर हुआ तो दोनों मंगली हुए। यदि दोनों की कुण्डलियों में मंगल उक्त स्थानों में न हों तो वे मंगली नहीं हैं। वर-वधू दोनों के मंगली होने पर या दोनों के मंगली न होने पर मेलापक मिला दिया जाता है। यदि वर-कन्या में से एक की कुण्डली में मंगल उक्त स्थानों में कहीं हो तथा दूसरे की कुण्डलो में मंगल उक्त स्थानों से भिन्न स्थान में हो तो एक मंगलीक होता है और दूसरा मंग-लीक नहीं होता। इस स्थिति में मेलापक नहीं मिलता। आज मेलापक यहीं समाप्त हो जाता है। इस प्रकार २ से ५ मिनटों में ज्योतिषी नामधारी व्यक्ति दो अपरिचित व्यक्तियों के भावी भाग्य एवं दाम्पत्य-जीवन का फैसला कर देता है।

यह कैसी विडिम्बना है कि आज हर एक पण्डित, कर्मकाण्डी, कथा-वाचक, पुजारी, साधु एवं संन्यासी स्वयं को ज्योतिषी वतलाने में लगा हुआ है। इससे भी अधिक दुर्भाग्य की वात यह है कि जनता ऐसे तथाकथित ज्योतिषियों के पास अपने भाग्य का निर्णय कराने, मुहूर्त और मेलापक पूँछने जाती है तथा ये नामधारी ज्योतिषी लोगों के भाग्य का फैसला चुटकियाँ बजाते-बजाते कर देते हैं। यही कारण है कि इन

लोगों से मेलापक मिलवाने के बाद भी वैवाहिक जीवन सुखमय न होने के असंख्य उदाहरण सामने आते हैं।

हम यह नहीं कहते कि पण्डित, कर्मकाण्डी कथावाचक या पुजारियों में सभी लोग ज्योतिष से अनभिज्ञ होते हैं। इनमें भी कुछ लोग ज्योतिष शास्त्र के अच्छे ज्ञाता होते हैं। किन्तु उनकी संख्या प्रतिशतक दृष्टि से काफी कम है। ज्योतिष शास्त्र को न जानने वाले लोगों की संख्या सर्वाधिक है, जो मेलापक मिलाने, मुहूर्त विचारने तथा विवाह कराने का कार्य करते हैं।

आप किसी डाक्टर के पास किसी लड़की या लड़के की सन्तानोत्पत्ति-क्षमता का विचार कराने जाइए। वह रज, वीर्य एवं रक्त आदि की भली-भाँति परीक्षा कर दो या तीन दिन में अपनी रिपोर्ट पक्ष या विपक्ष में देगा। यदि रिपोर्ट विपक्ष में हुई तो उसका कारण बतलाने के साथ-साथ चिकित्सा-विधि बतलायेगा। किन्तु आज समाज में मेलापक का विचार करने वाला ज्योतिषी, जिसने न वर को देखा है और न ही कन्या को, इन दोनों की कुण्डली लेकर २-४ मिनिट में इनके भावी जीवन एवं भाग्य का फैसला कर देता है, चाहे इन दोनों की कुण्डलियाँ ठीक हों या न हों। अब आप ही कल्पना कर सकते हैं कि इसका परिणाम क्या हो सकता है ?

हमारी राय में मेलापक का विचार ज्योतिष शास्त्र के अच्छे विद्वान् से कराना चाहिए। उन्हें विचार करने के लिए भी पूरा अवसर देना चाहिए। मेलापक विचार कोई बच्चों का खेल नहीं है। यह एक गूढ़ विषय है, जिसका सावधानी पूर्वक सर्वाङ्गीण विचार करना आवश्यक है। ग्रहमेलापक तथा नक्षत्र मेलापक के साथ-साथ लड़के की कुण्डली से उसके स्वास्थ्य, शिक्षा, भाग्य, आयु, चरित्र एवं सन्तानोत्पादन-क्षमता का विचार करना आवश्यक है। इसी प्रकार कन्या की कुण्डली से उसका स्वास्थ्य, स्वभाव, भाग्य, आयु, चरित्र एवं प्रजनन क्षमता का विचार कर लेना चाहिए। इन सब बातों पर ध्यान देने से जो कुण्डलियाँ उपयुक्त लगे उन युगलों के मेलापक की स्वीकृति देनी चाहिए।

मेलापक क्या है ?

दो युगलों की कुण्डली की ग्रहस्थिति और जन्मनक्षत्र के आधार पर उनकी प्रकृति एवं अभिरुचि में साम्यता तथा पूरकत्व का विचार मेलापक कहा जाता है। समान स्वभाव एवं समान रुचि के लोगों में सहज प्रेम होता है। जो लोग एक दूसरे के पूरक होते हैं अथवा यह कहिए कि जो लोग एक दूसरे पर आश्रित रहते हैं, उनका साथ लम्बे समय तक चलता है। मेलापक में इसी समानता एवं पूरकता का विचार किया जाता है। अतः हम कह सकते हैं कि मेलापक ज्योतिष शास्त्र की वह रीति है, जिसके द्वारा किसी अपरिचित युगल की प्रकृति एवम् अभिरुचि की समानता तथा जीवन के विविध पहलुओं में उनकी परस्पर पूरकता का विचार किया जाता है।

मेलापक के भेद

मेलापक के दो भेद माने गये हैं—१. नक्षत्र मेलापक तथा २. ग्रह-मेलापक। नक्षत्र मेलापक में वर-वधू की प्रकृति एवम् अभिरुचि की समानता का विचार होता है। तथा ग्रह-मेलापक में मंगल, शनि, सूर्य, राहु एवं केतु इन पापग्रहों की स्थिति, उसके प्रभाववश दोष और अन्ततोगत्वा वर वधू में पूरकत्व भाव का विश्लेषण किया जाता है। इस अध्याय में हम नक्षत्र मेलापक का विस्तार से विचार करेंगे।

नक्षत्र मेलापक में प्रमुख रूप से विचारणीय बातें

नक्षत्र मेलापक में प्रमुख रूप से निम्नलिखित ८ बातों का विचार किया जाता है—१. वर्ण, २. वश्य, ३. तारा, ४. योनि, ५. ग्रहमैत्री, ६. गण, ७. भकूट एवं ८. नाड़ी। इन वर्ण आदि आठों के गुण या पूर्णांक भी क्रमशः १, २, ३, ४, ५, ६, ७ एवं ८ होते हैं। इनका कुल योग ३६ होता है। यथा—

नाम		गुण
वर्ण		१
वश्य		२
तारा		३
योनि		४
ग्रहमैत्री		५
गणकूट		६
भकूट		७
नाड़ी		८
कुल योग	=	३६

वर एवं वधू के जन्मनक्षत्रों से उक्त आठों बातों का विचार किया जाता है। जिन बातों में समानता या शुभता होती है, उनके गुण या अंकों का योग कर लिया जाता है। इन ८ बातों का विचार करने की रीति इस प्रकार है—

(१) वर्ण विचार

वर एवं कन्या के जन्मनक्षत्र से उनकी राशि का निश्चय करके वर्ण का विचार करना चाहिए।

वर्ण चार होते हैं—१. ब्राह्मण, २. क्षत्रिय, ३. वैश्य एवं ४. शूद्र। इनका निर्धारण जन्मराशि के आधार पर किया जाता है। जिसका जन्म कर्क, वृश्चिक या मीन राशि में हो उसका वर्ण ब्राह्मण होता है। जिसका जन्म मेष, सिंह या धनु राशि में हो वह क्षत्रिय वर्ण का होता है। जिसका जन्म वृष, कन्या या मकर राशि में हो वह वैश्य वर्ण का तथा जिसका जन्म मिथुन, तुला या कुम्भ राशि में हो वह व्यक्ति शूद्र वर्ण का कहलाता है। जन्मनक्षत्र से राशि का ज्ञान निम्नलिखित चक्र से कर लेना चाहिए—

राशि-ज्ञानार्थ चक्र

<table>
<tr><td>नक्षत्र</td><td colspan="4">अश्विनी</td><td colspan="4">भरणी</td><td colspan="4">कृत्तिका</td><td colspan="4">रोहिणी</td><td colspan="4">मृगशीर्ष</td><td colspan="4">आर्द्रा</td><td colspan="4">पुनर्वसु</td><td colspan="4">पुष्य</td><td colspan="4">अश्लेषा</td></tr>
<tr><td>चरणांक</td><td>१</td><td>२</td><td>३</td><td>४</td><td>१</td><td>२</td><td>३</td><td>४</td><td>१</td><td>२</td><td>३</td><td>४</td><td>१</td><td>२</td><td>३</td><td>४</td><td>१</td><td>२</td><td>३</td><td>४</td><td>१</td><td>२</td><td>३</td><td>४</td><td>१</td><td>२</td><td>३</td><td>४</td><td>१</td><td>२</td><td>३</td><td>४</td><td>१</td><td>२</td><td>३</td><td>४</td></tr>
<tr><td>राशि</td><td colspan="9">मेष</td><td colspan="9">वृष</td><td colspan="9">मिथुन</td><td colspan="9">कर्क</td></tr>
<tr><td>नक्षत्र</td><td colspan="4">मघा</td><td colspan="4">पू० फा०</td><td colspan="4">उ० फा०</td><td colspan="4">हस्त</td><td colspan="4">चित्रा</td><td colspan="4">स्वाति</td><td colspan="4">विशाखा</td><td colspan="4">अनुराधा</td><td colspan="4">ज्येष्ठा</td></tr>
<tr><td>चरणांक</td><td>१</td><td>२</td><td>३</td><td>४</td><td>१</td><td>२</td><td>३</td><td>४</td><td>१</td><td>२</td><td>३</td><td>४</td><td>१</td><td>२</td><td>३</td><td>४</td><td>१</td><td>२</td><td>३</td><td>४</td><td>१</td><td>२</td><td>३</td><td>४</td><td>१</td><td>२</td><td>३</td><td>४</td><td>१</td><td>२</td><td>३</td><td>४</td><td>१</td><td>२</td><td>३</td><td>४</td></tr>
<tr><td>राशि</td><td colspan="9">सिंह</td><td colspan="9">कन्या</td><td colspan="9">तुला</td><td colspan="9">वृश्चिक</td></tr>
<tr><td>नक्षत्र</td><td colspan="4">मूल</td><td colspan="4">पू० षा०</td><td colspan="4">उ० षा०</td><td colspan="4">श्रवण</td><td colspan="4">धनिष्ठा</td><td colspan="4">शत०</td><td colspan="4">पू० भा०</td><td colspan="4">उ० भा०</td><td colspan="4">रेवती</td></tr>
<tr><td>चरणांक</td><td>१</td><td>२</td><td>३</td><td>४</td><td>१</td><td>२</td><td>३</td><td>४</td><td>१</td><td>२</td><td>३</td><td>४</td><td>१</td><td>२</td><td>३</td><td>४</td><td>१</td><td>२</td><td>३</td><td>४</td><td>१</td><td>२</td><td>३</td><td>४</td><td>१</td><td>२</td><td>३</td><td>४</td><td>१</td><td>२</td><td>३</td><td>४</td><td>१</td><td>२</td><td>३</td><td>४</td></tr>
<tr><td>राशि</td><td colspan="9">धनु</td><td colspan="9">मकर</td><td colspan="9">कुम्भ</td><td colspan="9">मीन</td></tr>
</table>

वर्णज्ञानार्थ चक्र

वर्ण	क्षत्रिय	वैश्य	शूद्र	ब्राह्मण
राशियों	मेष सिंह धनु	वृष कन्या मकर	मिथुन तुला कुम्भ	कर्क वृश्चिक मीन

इस प्रकार वर एवं कन्या के वर्ण का निश्चय कर इनके गुणांक का विचार करते हैं। यदि कन्या के वर्ण से वर का वर्ण उच्च हो तो १ गुण मिलता है। वर एवं कन्या दोनों का वर्ण समान होने पर कुछ विद्वान् आधा गुण तथा अधिकांश विद्वान् एक गुण मानते हैं। यदि वर के

वर्ण गुणांक बोधक चक्र

कन्या का वर्ण	वर का वर्ण: ब्राह्मण	क्षत्रिय	वैश्य	शूद्र
ब्राह्मण	१	०	०	०
क्षत्रिय	१	१	०	०
वैश्य	१	१	१	०
शूद्र	१	१	१	१

वर्ण से कन्या का वर्ण उच्च हो तो गुण शून्य मिलता है। कारण यह है कि वर्ण कार्यक्षमता का द्योतक होता है। तथा कन्या की कार्यक्षमता से वर की कार्यक्षमता का अधिक या समान होना परिवार की गाड़ी को चलाने के लिए आवश्यक होता है, अस्तु।

उदाहरण

उदाहरणार्थ मान लीजिए कि वर का जन्म पुष्य नक्षत्र के तृतीय चरण में तथा कन्या का जन्म उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र के प्रथम चरण में हुआ है। इस प्रकार वर की राशि कर्क तथा कन्या की राशि सिंह है। इन दोनों की कुण्डलियों से स्वास्थ्य आयु, भाग्य, चरित्र एवं सन्तति आदि का पिछले अध्यायों में बतलायी गयी रीति से विचार कर वर एवं वधू को विवाह के योग्य मानकर इन दोनों का मेलापक मिलाना चाहिए।

यहाँ नक्षत्र मेलापक में सर्वप्रथम वर्ण का विचार कर रहे हैं। वर की कर्क राशि होने के कारण उसका वर्ण ब्राह्मण है तथा कन्या की राशि सिंह होने के कारण उसका वर्ण क्षत्रिय है। इस तरह कन्या के वर्ण से वर का वर्ण उच्च है, जो शुभता एवं परिवार का दायित्व उठाने की क्षमता का प्रतीक है। अतः इन दोनों के वर्ण परस्पर शुभ हैं। पूर्वोक्त रीति से इनके वर्णों के अनुसार गुणांक = १ हुआ।

(२) वश्य-विचार

वश्य पाँच प्रकार के होते हैं—१. चतुष्पाद, २. मानव (द्विपद), ३. जलचर, ४. वनचर एवं ५. कीट।

मेष, वृष, सिंह, धनु का उत्तरार्द्ध तथा मकर का पूर्वार्द्ध चतुष्पाद संज्ञक होते हैं। इनमें से सिंह राशि चतुष्पाद होते हुए भी वनचर मानी गयी है। मिथुन, कन्या, तुला, धनु का पूर्वार्द्ध तथा कुम्भ राशि द्विपद या मानव संज्ञक मानी गयी है। मकर का उत्तरार्द्ध, मीन तथा कर्क राशि जलचर होती है। इनमें से कर्क राशि जलचर होते हुए भी कीट मानी गई है। सिंह वनचर होता है। इस प्रकार वर एवं कन्या के वश्य का निर्धारण उनकी राशि से कर लेना चाहिए।

वश्य-बोधक चक्र

राशि	मेष	वृष	मिथुन	कर्क	सिंह	कन्या
वश्य	चतुष्पाद	चतुष्पाद	मानव	कीट जलचर	वनचर चतुष्पाद	मानव
राशि	तुला	वृश्चिक	धनु	मकर	कुम्भ	मीन
वश्य	मानव	कीट	मानव चतुष्पाद	चतुष्पाद जलचर	मानव	जलचर

यदि आप राशियों की आकृतियों पर ध्यान दें तो इनकी चतुष्पाद एवं मानव आदि संज्ञाएँ सुगमता पूर्वक जानी जा सकती हैं। मेष की आकृति मेंढा या भेड़ जैसी होती है। इसके ४ पैर होने के कारण इसे चतुष्पाद कहते हैं। वृष एवं सिंह राशि की आकृति बैल एवं शेर जैसी मानी गई है। इनके भी ४-४ पैर होते हैं। धनु के पूर्वार्द्ध में धनुर्धारी पुरुष तथा उत्तरार्ध में अश्व माना गया है। इसलिए इसका पूर्वार्ध मानव तथा उत्तरार्ध चतुष्पाद होता है। मकर का पूर्वार्ध में हिरन तथा उत्तरार्ध में मगर होता है। अतः इसका पूर्वार्ध चतुष्पाद तथा उत्तरार्ध जलचर होता है। मिथुन, कन्या, तुला एवं कुम्भ राशि मानव आकृति वाली हैं। अतः इनका वश्य मानव होता है। सिंह जंगल में रहने के कारण वनचर कहलाता है। कर्क एवं वृश्चिक दोनों कीड़े-मकोड़ों की जाति के हैं। इसलिए ये दोनों कीट संज्ञक हैं। तथा मीन (मछली) जल में रहने के कारण जलचर कही गई है।

उक्त पाँचों वश्य अपने स्वभाव एवं व्यवहार के कारण ४ वर्गों में विभक्त किये गये हैं—१. वश्य, २. मित्र (सख्य), ३. शत्रु (वैरी) एवं

४. भक्ष्य। जैसे वृश्चिक को छोड़कर अन्य सब राशियाँ, सिंह के वश में रहने के कारण इसकी वश्य मानी गई हैं। किन्तु वृश्चिक बिच्छू है, वह बिल में रहने के कारण सिंह के वश में नहीं रहता है। सिंह को छोड़कर अन्य चतुष्पाद मानव के वश्य हैं किन्तु जलचर उसके भक्ष्य हैं। प्रत्येक वश्य की अपने वर्ग से मित्रता तथा घातक वर्ग से शत्रुता होती है।

वर एवं कन्या की राशियों से उनके वश्य का निश्चय करके फिर उनके स्वभाव के अनुसार उनमें वश्यभाव, मित्रभाव, शत्रुभाव या भक्ष्य-भाव पर ध्यान देना चाहिए। यदि इन दोनों के वश्यों में मित्रता हो तो

वश्यगुण-बोधक चक्र

		वर के वश्य				
		चतुष्पाद	मानव	जलचर	वनचर	कीट
कन्या के वश्य	चतुष्पाद	२	॥	१	॥	१
	मानव	॥	२	०	०	०
	जलचर	१	०	२	२	२
	वनचर	॥	०	२	२	०
	कीट	१	०	२	०	२

२ गुण, यदि एक वश्यभाव एवं दूसरा शत्रुभाव रखता हो तो १ गुण,

यदि एक वश्य भाव और दूसरा भक्ष्य भाव रखता हो तो आधा गुणा तथा दोनों परस्पर शत्रुभाव या भक्ष्यभाव रखते हों तो कोई गुण नहीं मिलता।

उदाहरण

मान लीजिए कि वर का पुष्य नक्षत्र में तथा कन्या का उत्तराफाल्गुनी के प्रथम चरण में जन्म हुआ है। इन दोनों की राशियाँ क्रमशः कर्क एवं सिंह हैं तथा दोनों के वश्य यथाक्रमेण कीट एवं वनचर हैं। वनचर एवं कीट परस्पर शत्रुभाव एवं भक्ष्यभाव रखते हैं। इसलिए इन दोनों का वश्य शुभ नहीं कहा जायेगा। इस स्थिति में इन दोनों वर-कन्या की अभिरुचि में अन्तर रहेगा तो आगे चलकर दाम्पत्य जीवन में वैचारिक मतभेद पैदा कर सकता है। वश्य के कुल गुण २ होते हैं। यहाँ शत्रु वश्य होने के कारण इस उदाहरण में गुण संख्या = ० हुई।

(३) तारा विचार

तारा नौ प्रकार की होती है—१. जन्म, २. सम्पत्, ३. विपत्, ४. क्षेम, ५. प्रत्यरि, ६. साधक, ७. वध, ८. मित्र एवं ९. अतिमित्र। इन ताराओं के नाम एवं फल दोनों एक समान माने गये हैं। इन ताराओं में से ३, ५ एवं ७वीं तारा अर्थात्—विपत्, प्रत्यरि एवं वध तारा—अपने नाम के सदृश अशुभ प्रभाव के कारण निन्द्य मानी गयी है।

वर-कन्या के मेलापक के प्रसंग में तारा के ३ गुण होते हैं। तारा के शुभा-शुभत्व की जानकारी के लिए वर के नक्षत्र से कन्या नक्षत्र तक गिनकर प्राप्त संख्या में ९ का भाग दें। एक आदि शेष होने पर क्रमशः जन्म, सम्पत् आदि तारा होती है। इसी प्रकार कन्या के नक्षत्र से वर के नक्षत्र तक गिनकर ९ का भाग देकर एक आदि शेष के अनुसार उसकी तारा जानी जा सकती है।

इस प्रकार वर एवं वधू दोनों की ताराओं का निर्धारण कर लेना चाहिए। यदि दोनों की तारा विपत्, प्रत्यरि एवं वध न हो तो तारा शुभ

तारा गुणांक बोधक चक्र

कन्या की तारा	वर की तारा								
	जन्म	सम्पत्	विपत्	क्षेम	प्रत्यरि	साधक	वध	मित्र	अति मित्र
जन्म	३	३	१॥	३	१॥	३	१॥	३	३
सम्पत्	३	३	१॥	३	१॥	३	१॥	३	३
विपत्	१॥	१॥	०	१॥	०	१॥	०	१॥	१॥
क्षेम	३	३	१॥	३	१॥	३	१॥	३	३
प्रत्यरि	१॥	१॥	०	१॥	०	१॥	०	१॥	१॥
साधक	३	३	१॥	३	१॥	३	१॥	३	३
वध	१॥	१॥	०	१॥	०	१॥	०	१॥	१॥
मित्र	३	३	१॥	३	१॥	३	१॥	३	३
अतिमित्र	३	३	१॥	३	१॥	३	१॥	३	३

होती है तथा उसके पूरे ३ गुण माने जाते हैं। यदि वर-वधू दोनों में से एक की तारा शुभ एवं एक की अशुभ हो तो तारा का मेलापक औसतन होता है। इस स्थिति में १।। गुण मिलते हैं। और यदि दोनों की तारा अशुभ हो—अर्थात् इन दोनों की ताराएँ विपत्, प्रत्यरि या बध हो—तो तारा का मेलापक पूर्णरूपेण निन्द्य माना गया है। इस स्थिति में गुण शून्य माना जाता है। कारण स्पष्ट है कि वर एवं वधू दोनों की विपत् तारा उनके भावी दाम्पत्य जीवन में आने वाली विपत्तियों की ओर इंगित करती है। यदि दोनों की तारा प्रत्यरि हो तो इन दोनों के स्वभाव में मतभेद या विरोध रहता है। इसी प्रकार दोनों की वध तारा भावी जीवन में आने वाले अनिष्ट की सूचक मानी गयी है। यदि वर-वधू दोनों की ताराएँ विपत्, प्रत्यरि या वध में से कोई भी हों तो भी इन ताराओं का नाम सदृश अशुभ फल भावी दाम्पत्य-सुख को हानि कारक होता है।

उदाहरण

प्रचलित उदाहरण में वर का जन्म पुष्य नक्षत्र में तथा कन्या का जन्म उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र में माना गया है। अतः पूर्वोक्त रीति के अनुसार वर के नक्षत्र से कन्या के नक्षत्र तक गिनने से ५ संख्या प्राप्त हुई। अतः वर की तारा प्रत्यरि हुई फिर कन्या के नक्षत्र से वर के नक्षत्र तक गिनने से संख्या २४ आयी। इसमें ९ का भाग देने पर ६ शेष बचा। अतः कन्या की तारा साधक हुई। यहाँ वर की प्रत्यरि तारा अशुभ है। किन्तु कन्या की साधक तारा शुभ है। इसका फलितार्थ यह हुआ कि वर की तारा भावी दाम्पत्य जीवन में मतभेद या विरोध पैदा करेगी। किन्तु कन्या की तारा उन मत-भेद एवं विरोधों को शान्त करने का प्रयास करेगी। अतः इस उदाहरण में तारा का मेलापक औसतन या मिलाजुला फल देने वाला है। इस स्थिति में तारा के गुण १।। आते हैं। देखें तारा गुणांक बोधक चक्र पृ० १०२।

(४) योनि विचार

योनि-मेलापक का विचार न केवल वर-वधू के मेलापक में ही

विचारणीय होता है, अपितु यह साझेदारी, मालिक, नौकर एवं राजा तथा मंत्री के परस्पर मेलापक में भी विचारणीय माना गया है।

योनियाँ १४ होती हैं, जिनके नाम हैं—१. अश्व, २. गज, ३. मेष, ४. सर्प, ५. श्वान, ३. मार्जार, ७. मूषक, ८. गौ, ९. महिष, १०. व्याघ्र, ११. मृग, १२. वानर, १३. नकुल एवं १४. सिंह। योनि विचार में नक्षत्रों की संख्या २८ मानी गयी है। इसमें २७ नक्षत्रों के अलावा २८वाँ नक्षत्र अभिजित माना गया है। उत्तराषाढ़ के चतुर्थ चरण को अधिकांश

योनि बोधक चक्र

नक्षत्र	अश्वि.	भरणी	कृत्ति.	रोहि.	मृग	आर्द्रा	पुन.
योनि	अश्व	गज	मेष	सर्प	सर्प	श्वान	विडाल
नक्षत्र	पुष्य	आश्ले.	मघा	पू. फा.	उ. फा.	हस्त	चित्रा
योनि	मेष	विडाल	मूषक	मूषक	गौ	महिष	व्याघ्र
नक्षत्र	स्वाति	विशा.	अनु.	ज्येष्ठा	मूल	पू. षा.	उ. षा.
योनि	महिष	व्याघ्र	हरिण	हरिण	श्वान	वानर	नकुल
नक्षत्र	अभि.	श्रवण	धनि.	शत	पू. भा.	उ. भा.	रेवती
योनि	नकुल	वानर	सिंह	अश्व	सिंह	गौ	गज

आचार्यों ने अभिजित् नक्षत्र माना है। अतः योनि का विचार करते समय यह ध्यान में रखना चाहिए कि वर या कन्या में से किसी का जन्म उत्तराषाढ़ के चतुर्थ चरण में तो नहीं हुआ ? यदि इन दोनों में से किसी का जन्म उत्तराषाढा नक्षत्र के चतुर्थ चरण में हुआ हो तो योनि का विचार करते समय उसका नक्षत्र अभिजित् मान लेना चाहिए।

व्यक्ति के जन्म नक्षत्र के आधार पर उसकी योनि का ज्ञान योनि बोधक चक्र पृ० १०४ से कर लेना चाहिए।

योनि विचार में समान योनि शुभ मानी गयी है। मित्र योनि एवं भिन्न योनि ग्राह्य होती हैं। किंतु वैर (शत्रु योनि) सर्वथा वर्जित होती हैं। योनियों में परस्पर शत्रुता निम्नलिखित चक्र से जानी जा सकती है—

शत्रु योनि बोधक चक्र

योनि	अश्व	गज	मेष	सर्प	श्वान	मार्जार (विडाल)	मूषक
शत्रुयोनि	महिष	सिंह	वानर	नकुल	मृग	मूषक	मार्जार
योनि	गौ	महिष	व्याघ्र	मृग	वानर	नकुल	सिंह
शत्रुयोनि	व्याघ्र	अश्व	गौ	श्वान	मेष	सर्प	गज

योनि विचार में पूर्ण शुभता के द्योतक ४ अंक होते हैं। वर एवं वधू के समान योनि होने पर ४ अंक, मित्र योनि होने पर ३ अंक, समयोनि के २ अंक, मित्र योनि का १ अंक तथा शत्रु योनि के ० शून्य अंक माने जाते हैं। योनियों की शत्रुता पति-पत्नी, साझेदार एवं नौकर-मालिक की मनोवृत्ति तथा उनके जीवन के मूल्यों में स्वाभाविक अन्तर की द्योतक होती है। समान योनि के लोगों की मनोवृत्ति, रुचि एवं जीवन के मूल्य

वर की योनि

कन्या की योनि

	अश्व	गज	मेष	सर्प	श्वान	मार्जार	मूषक	गौ	महिष	व्याघ्र	मृग	वानर	नकुल	सिंह
अश्व	४	२	२	३	२	२	२	१	०	१	३	३	२	१
गज	२	४	३	३	२	२	२	२	३	१	२	३	२	०
मेष	२	३	४	२	१	२	१	३	३	१	२	०	३	१
सर्प	३	३	२	४	२	१	१	१	१	२	२	२	०	२
श्वान	२	२	१	२	४	२	१	२	२	१	०	२	१	१
मार्जार	२	२	२	१	२	४	०	२	२	१	३	३	२	१
मूषक	२	२	१	१	१	०	४	२	२	२	२	२	१	२
गौ	१	२	३	१	२	२	२	४	३	०	३	२	२	१
महिष	०	३	३	१	२	२	२	३	४	१	२	२	२	१
व्याघ्र	१	१	१	२	१	१	२	१	१	४	१	१	२	१
मृग	३	२	२	२	०	३	२	३	२	१	४	२	२	१
वानर	३	३	०	२	२	३	२	२	२	१	२	४	३	२
नकुल	२	२	३	०	१	२	१	२	२	२	२	३	४	२
सिंह	१	०	१	२	१	१	२	१	१	१	१	२	२	४

समान होते हैं, तथा ऐसे लोगों में मित्रता एवं सहज प्रेम भाव दिखलाई देता है।

योनि मेलापक में गुणांकों की जानकारी निम्नलिखित चक्र से कर लेनी चाहिए—

उदाहरण

प्रचलित उदाहरण में वर का नक्षत्र पुष्य तथा कन्या का नक्षत्र उत्तरा फाल्गुनी है। उक्त रीति के अनुसार इन दोनों की योनियाँ क्रमशः मेष तथा गौ होती हैं। ये दोनों योनियाँ परस्पर मित्र हैं। अतः योनि मेलापक का गुणांक ३ मानना चाहिए।

योनियों में मित्रता होने के कारण यह कहा जा सकता है कि इन दोनों वर-कन्या की मनोवृत्ति, रुचि तथा जीवन के मूल्यों में काफी सामञ्जस्य है। अतः ये दोनों अपने भावी दाम्पत्य-जीवन में प्रेमपूर्वक, हिल-मिलकर और एक दूसरे का बिना विरोध किये गार्हस्थ्य जीवन का उपभोग करेंगे।

ग्रहमैत्री-विचार

मेलापक में ग्रहमैत्री का काफी महत्त्व है। जन्म के समय चन्द्रमा जिस राशि में होता है, वह राशि तथा उसका स्वामी ग्रह ये दोनों व्यक्ति के सहज स्वभाव के द्योतक होते हैं। चन्द्रमा मन का प्रतिनिधि ग्रह है। यह जन्मकाल में जिस राशि पर स्थित होता है, व्यक्ति की मनोवृत्ति एवं स्वभाव भी वैसा ही बन जाता है। मेषादि राशियों का स्वभाव अपने स्वामियों जैसा होता है। इसलिए जन्मराशि का स्वामी ग्रह व्यक्ति के मानसिक या स्वभावगत विश्लेषण के लिए सबसे अच्छा उपकरण माना गया है।

अनजान व्यक्तियों में मित्रता रहेगी या शत्रुता ? इसकी जानकारी ज्योतिष शास्त्र में उन व्यक्तियों की राशीशों की मित्रता या शत्रुता से जानी जाती है। यही कारण है कि वर-वधू के मेलापक में ग्रहमैत्री को

इतना महत्त्व दिया गया है।

जैसे दो सच्चे मित्र दैनन्दिन जीवन में लेन देन, तात्कालिक मतभेद, क्षुद्र व्यवहार या अन्य छोटी मोटी बातों पर ध्यान नहीं देते और अपनी मित्रता को सर्वाधिक महत्त्व देते हैं, चाहें उन्हें एक-दो बार कड़वी घूंट पीकर भी रह जाना पड़े। ठीक उसी प्रकार मेलापक में राशीशों की मित्रता होने पर गणदोष, भकूटदोष एवं अन्यान्य छोटे-मोटे दोष दम्पति के सम्वन्धों को दूषित नहीं कर पाते। अपितु उनका सहज-स्नेह या प्रेम भाव वना रहता है। गणदोष एवं भकूट दोष (इनका विचार आगे किया जा रहा है।) का एक मात्र परिहार ग्रहमैत्री ही है। इसलिए मेलापक में ज्योतिष शास्त्र आचार्यों ने ग्रहमैत्री अर्थात् राशीशों की मित्रता को सर्वाधिक महत्त्व दिया है।

ग्रह मैत्री का विचार करने के लिए सर्वप्रथम वर एवं कन्या की राशि तथा उसके स्वामियों को जान लेना चाहिए। मेष आदि राशियों के स्वामी क्रमशः मंगल, शुक्र, बुध, चन्द्रमा, सूर्य, बुध, शुक्र, मंगल, गुरु, शनि, शनि एवं गुरु होते हैं। इस प्रकार वर एवं कन्या के राशीशों को जानकर यह विचार करना चाहिए कि वे एक-दूसरे के मित्र हैं ? परस्पर शत्रु हैं ? अथवा सम हैं ?

ग्रहों में नैसर्गिक रूप से ३ प्रकार के सम्वन्ध होते हैं। कुछ ग्रह एक दूसरे के मित्र कुछ शत्रु तथा कुछ अन्य सम (न मित्र नहीं शत्रु) होते हैं। ग्रहों की मित्रता, शत्रुता एवं समता की जानकारी ग्रहमैत्री वोधक चक्र पेज १०९ से कर लेनी चाहिए।

इस प्रकार वर एवं कन्या की राशि के स्वामी परस्पर जो सम्वन्ध वनाते हैं, उनको अधोलिखित ७ वर्गों में रखा जा सकता है—१. परस्पर मित्र, २. एक सम दूसरा मित्र, ३. एक मित्र दूसरा शत्रु, ४. परस्पर सम, ५. एक सम दूसरा शत्रु, ६. परस्पर शत्रु तथा ७. दोनों का एकाधिपति।

ग्रह मैत्री के कुल गुणांक ५ होते हैं, तथा जब वर एवं कन्या दोनों की राशियों के स्वामी ग्रह परस्पर मित्र हों अथवा इन दोनों की राशियों का स्वामी एक ही ग्रह हो तो दम्पति में अतिशय प्रेम रहता है। यदि

इन दोनों की राशियों के स्वामी परस्पर शत्रु हों तो दम्पति में झगड़ा विवाद, कलह या मतभेद होता है। अतः इस स्थिति में विवाह नहीं करना चाहिए। अन्य सम्बन्धों में एक सम दूसरा मित्र तथा परस्पर सम

ग्रहमैत्री बोधक चक्र[1]

ग्रह	सूर्य	चन्द्र	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
मित्र	चन्द्र मंगल गुरु	सूर्य बुध	सूर्य चन्द्र गुरु	सूर्य शक्र	सूर्य चन्द्र मंगल	बुध शनि	बुध शुक्र
सम	बुध	मंगल गुरु शुक्र शनि	शुक्र शनि	मंगल गुरु शनि	शनि	मंगल गुरु	गुरु
शत्रु	शुक्र शनि	×	बुध	चन्द्र	बुध शुक्र	सूर्य चन्द्र	सूर्य चन्द्र मंगल

१. इस चक्र में सूर्य आदि ७ ग्रहों के मित्र आदि का उल्लेख किया गया है। क्योंकि यही ग्रह राशियों के स्वामी होते हैं। राहु केतु के मित्र आदि जानकारी के लिए अन्य ग्रन्थ देखें।

होना भी विवाह के लिए हानिप्रद नहीं माना गया। शेष सम्बन्ध दाम्पत्य जीवन में मतभेद उत्पन्न कर सकते हैं। अतः वे मेलापक में ग्राह्य नहीं हैं।

ग्रहों के उक्त ७ प्रकार के सम्बन्ध तथा उनसे प्राप्त होने वाले गुणांकों की जानकारी अधोलिखित चक्र से कर लेनी चाहिए।

ग्रह मैत्री का गुणांक बोधक चक्र

सम्वन्ध	गुणांक
१. परस्पर मित्र	५
२. एक सम दूसरा मित्र	४
३. एक मित्र दूसरा शत्रु	१
४. परस्पर सम	३
५. एक सम दूसरा शत्रु	१/२
६. परस्पर शत्रु	०
७. दोनों का एकाधिपति	५

उदाहरण

नक्षत्र मेलापक के प्रचलित उदाहरण में वर का नक्षत्र पुष्य तथा कन्या का नक्षत्र उत्तराफाल्गुनी (प्रथम चरण) माना गया है। इन दोनों की राशियाँ क्रमशः कर्क तथा सिंह हैं, जिनके स्वामी क्रमशः चन्द्रमा एवं सूर्य होते हैं। सूर्य एवं चन्द्रमा परस्पर एक दूसरे के मित्र होते हैं। अतः इस उदाहरण में ग्रहमैत्री उत्तम है। इसलिए ग्रहमैत्री के गुणांक ५ मानने चाहिए। वर एवं कन्या की राशियों में नैसर्गिक मित्रता होने के कारण इन दोनों के दाम्पत्य सम्वन्ध प्रेममय रहेंगे। तथा ये मित्र की भाँति अपने पारिवारिक दायित्व का निर्वाह कर सकेंगे—यह फलितार्थ बतलाना चाहिए।

(६) गण-विचार

गण तीन होते हैं—१. देव, २. मनुष्य एवं ३. राक्षस। ये प्रकृति के तीन गुणों—सत्त्व, रजस् एवं तमस्—के प्रतीक माने गये हैं। इनका ज्ञान जन्मनक्षत्र के आधार पर किया जाता है। अश्विनी आदि २७ नक्षत्रों में उत्पन्न व्यक्ति के गण का निश्चय निम्नलिखित चक्र से किया जा सकता है।

गण बोधक चक्र

जन्म नक्षत्र	गण
अश्वि. मृग. पुन. पुष्य. हस्त. स्वाति. अनु. श्रव. रेव.	देव
भर. रोहि. आर्द्रा. पू. फा. उ. फा. पू. षा. उ. षा. पू. भा. उ. भा.	मनुष्य
कृत्ति. आश्ले. मघा, चित्रा, विशा, ज्येष्ठा, मूल, धनि., शत.	राक्षस

देवगण में उत्पन्न व्यक्ति स्वभावतः सात्त्विक होता है। उसमें भावुकता, उदारता, सहनशीलता, शालीनता, उदात्त भाव, प्रेम, उपकार, दया, तितिक्षा, धैर्य, आत्मविश्वास, वन्धुत्व एवं लोकप्रियता पर्याप्त मात्रा में पायी जाती है। मनुष्य गण में उत्पन्न व्यक्ति चतुर, चैतन्य, दूरदर्शी, स्वाभिमानी, साहसी, अपने हित का चिन्तक तथा अपने हित की रक्षा करने वाला, सौन्दर्य प्रेमी, व्यवहार कुशल, सामाजिक कार्य-कर्ता, प्रभावशाली, प्रतिष्ठा एवं यश चाहने वाला तथा स्वयं को परि-स्थिति के अनुरूप ढालने वाला होता है। ऐसा व्यक्ति भोगोपभोग, प्रभाव एवं प्रतिष्ठा को सर्वाधिक महत्त्व देता है। राक्षस गण में उत्पन्न व्यक्ति साहसी, क्रोधी, स्वार्थी, धूर्त, चालाक लोगों पर रुआब जमाने वाला, जिद्दी लापरवाह, क्षणिकमति, बलवान्, अभिमानी, कठोर एवं दृढभाषी, परनिन्दक, आत्मश्लाघी एवम् अपनी इच्छा या अपने हित के लिए किसी को भी हानि पहुँचाने वाला होता है। वह स्वभावतः उग्र, दृढ़निश्चयी एवं एकाधिकार में विश्वास रखने वाला होता है।

वर एवं कन्या दोनों का गण एक ही हो तो उन दोनों के स्वभाव में समानता होने के कारण उन दोनों में अत्यन्त प्रेम रहता है। यदि उन दोनों में से एक का गण मनुष्य तथा दूसरे का देव हो तो उनमें प्रेम मध्यम दर्जे का रहता है। इस स्थिति में वे स्वयं को आपस में व्यवस्थित कर बगैर किसी विरोध या मतभेद के साथ-साथ रहते हैं। किन्तु देवगण एवं राक्षस गण में उत्पन्न वर-वधू में प्रेम का अभाव तथा स्वाभाविक मतभेद रहने की सम्भावना बतलायी गयी है। यही स्थिति मनुष्य एवं राक्षस गण में उत्पन्न वर-कन्या की मानी गयी है। तात्पर्य यह है कि जिन युगलों में एक का गण देव और दूसरे का राक्षस अथवा एक का मनुष्य गण तथा दूसरे का राक्षस गण हो उन लोगों के स्वभाव, रुचि एवं जीवन के मूल्यों में आधारभूत मतभेद होने के कारण उन लोगों में प्रायः विरोध, कलह एवं विवाद होता रहता है। अतः इस स्थिति में विवाह करना वर्जित माना गया है।

गण दोष का परिहार

जिन युगलों में से एक का देवगण तथा दूसरे का राक्षस गण हो अथवा उनमें से एक का मनुष्य गण तथा दूसरे का राक्षस गण हो तो इसे गण दोष कहते हैं। इस स्थिति में विवाह करना सामान्यतया वर्जित माना गया है।

किन्तु यदि वर एवं कन्या के राशीशों (राशि स्वामियों) में नैसर्गिक मित्रता हो अथवा उन दोनों की राशियों का स्वामी एक ही ग्रह हो तो गण दोष अपना दूषित प्रभाव नहीं डाल पाता। कारण यह है कि प्रकृति, मनोवृत्ति एवं रुचि में समानता का विचार राशीशों की मित्रता से किया जाता है, जैसा कि ग्रहमैत्री विचार के समय बतलाया जा चुका है। अतः राशीशों के नैसर्गिक मित्रता या एकता गणदोष के होने पर भी दम्पति में किसी प्रकार का मतभेद, विरोध या कलह पैदा नहीं होने देती।

गण विचार में पूर्ण शुभता के द्योतक ६ गुण माने गये हैं। अतः वर-वधू दोनों का गण समान हो तो ६ गुण, कन्या का देव और वर का मनुष्य हो तो ५ गुण, वर का देव एवं कन्या का मनुष्य गण हो तो

गण गुण-बोधक चक्र

		वर के गण		
		देव	मनुष्य	राक्षस
कन्या के गण	देव	६	५	१
	मनुष्य	६	६	०
	राक्षस	१	०	६

६ गुण, दोनों में से किसी एक का देव और अन्य का राक्षस गुण हो तो १ गुण तथा दोनों में से किसी एक का मनुष्य और अन्य का राक्षस गण हो तो गुण शून्य होता है। गण मेलापक में गुणों की संख्या निम्नलिखित चक्र से जानी जा सकती है।देखें पृष्ठ ११३।

उदाहरण

नक्षत्र-मेलापक के पूर्वोक्त उदाहरण में वर का नक्षत्र पुष्य तथा कन्या का नक्षत्र उत्तराफाल्गुनी माना गया है। पुष्य नक्षत्र के देवगण तथा उत्तराफाल्गुनी का मनुष्यगण होता है। देव एवं मनुष्य गणों में मित्रता होती है। अतः इस उदाहरण में गण दोष नहीं है। अपितु दोनों के गणों में मित्रता है। परिणामतः इन दोनों की भावी जीवन में भी मित्रता रहने की आशा है। गण शुभ होने के कारण इसके गुण ६ मिलते हैं। अतः इन दोनों का गण-मेलापक श्रेष्ठ है।

(७) भकूट विचार

भकूट का तात्पर्य वर एवं कन्या की राशियों के आपसी अन्तर से है। यह छः प्रकार का होता है—१. प्रथम सप्तम, २. द्वितीय द्वादश (द्विर्द्वादश), ३. तृतीय एकादश, ४. चतुर्थ दशम, ५. पंचम नवम (नव पंचम) एवं ६. षडाष्टक। उक्त ६ प्रकार के भकूट में से द्विर्द्वादश, नव पंचम एवं षडाष्टक ये तीनों दुष्टभकूट तथा शेष शुभ भकूट कहलाते हैं।

भकूट की जानकारी का सीधा तरीका यह है कि वर की राशि से कन्या की राशि तक तथा कन्या की राशि से वर की राशि तक गिनती कर लेनी चाहिए। यदि इन दोनों की राशि आपस में दूसरे एवं बारहवें पड़ती हो तो द्विर्द्वादश भकूट होता है। यदि इन की राशि परस्पर ९वीं एवं ५वीं पड़ती हो तो नव पंचम भकूट होता है। और यदि वर-कन्या की राशियाँ परस्पर ६ठे एवं ८वें पड़ती हों तो षडाष्टक होता है। मेलापक में द्विर्द्वादश, नवपंचम तथा षडाष्टक ये तीनों दोषों को काफी महत्त्व दिया गया है।

नक्षत्र मेलापक में द्विर्द्वादश नवपंचम एवं षडाष्टक ये तीनों भकूट अशुभ एवं त्याज्य माने गये हैं। इस का कारण यह है कि दूसरा स्थान धन का तथा बारहवाँ खर्च का स्थान होता है। द्विर्द्वादश भकूट में एक की राशि से दूसरे की राशि बारहवें पड़ती हैं, जो इस बात की प्रतीक है कि इन दोनों लोगों के खर्चे को अधिक बढ़ायेगा। तात्पर्य यह है कि द्विर्द्वादश भकूट भावी जीवन में खर्चे को बढ़ाकर आर्थिक सन्तुलन को बिगाड़ देता है। परिणामतः जीवन में धन की कमी या निर्धनता आ जाने की सम्भावना रहती है।

नवपंचम भकूट इसलिए त्याज्य माना गया है कि दाम्पत्य सम्बन्धों में विरक्ति तथा सन्तान की हानि करता है। नवम स्थान धर्म एवं तप का प्रतिनिधि भाव होता है। वर-वधू की राशियाँ जब आपस में ५वें एवं ९वें स्थान में हों तो धार्मिक भावना, तप-त्याग, दार्शनिक दृष्टि या प्रबल अहं की भावना दाम्पत्य सम्बन्धों में दूरी या वैराग्य उत्पन्न कर देती है। दाम्पत्य सम्बन्धों को सुखमय बनाने के लिए अनुरक्ति, आकर्षण एवम् आसक्ति का होना अनिवार्य है। किन्तु नवपंचम भकूट इन तीनों वृत्तियों/भावनाओं को दबा देता है। परिणाम स्वरूप दम्पति का गृहस्थ धर्म की ओर ध्यान न देने सें सन्तान के अभाव की आशंका बन जाती है। तात्पर्य यह है कि अनुराग, आकर्षण या आसक्ति के बिना भोग एवं संभोग की कल्पना करना सम्भव नहीं है। इसीलिए विरक्ति उत्पन्न करने वाले नवपंचम भकूट का परिणाम सन्तान का अभाव बतलाया गया है।

षडाष्टक भकूट एक महादोष है। क्योंकि छठा स्थान शत्रुता का तथा आठवाँ स्थान मृत्यु का होता है। यदि वर एवं कन्या राशियाँ आपस में छठी एवम् आठवीं हों तो इन दोनों के भावी जीवन में शत्रुता, विवाद, कलह एवं रोजाना के झगड़े-झंझट होते रहते हैं। न केवल तलाक अपितु नव दम्पति में से किसी एक की हत्या या आत्महत्या के सर्वाधिक मामले षडाष्टक भकूट में विवाह करने पर देखे गये हैं। इसलिए षडाष्टक भकूट महादोष माना गया है तथा मेलापक में यह

त्याज्य है।

शेष तीन भकूट तृतीय एकादश, चतुर्थ दशम तथा प्रथम सप्तम शुभ होते हैं। प्रथम सप्तम भकूट में दाम्पत्य सुख तथा अच्छी सन्तान होती है। तृतीय एकादश में आर्थिक स्थिति तथा जीवन स्तर उन्नत होता है। तथा चतुर्थ दशम भकूट में विवाह करने से दम्पति में अतिशय प्रेम बना रहता है।

भकूट दोष का परिहार

द्विर्द्वादश, नव पंचम एवं षडाष्टक ये तीनों भकूट दाम्पत्य जीवन में अशुभ प्रभाव डालने के कारण सामान्यतया त्याज्य माने गये हैं। किन्तु यदि वर एवं कन्या दोनों की राशियों का स्वामी एक ही ग्रह हो तो वह भकूट दोष के दुष्प्रभाव को निष्फल कर देता है। वर एवं कन्या की राशियों के स्वामी में एकता उन दोनों की प्रकृति, मनोवृत्ति एवं रुचि में समानता की द्योतक मानी गयी है तथा ऐसा होने पर दाम्पत्य सम्बन्धों में मधुरता रहती है। इसलिए दोनों का राशीश एक ग्रह होने पर भकूट दोष अपना प्रभाव नहीं दिखा पाता।

इसी प्रकार वर एवं कन्या के राशीशों में मित्रता तथा नाड़ी दोष न होने पर भी भकूट दोष प्रभावहीन हो जाता है। नाड़ी दोष का विचार आगे किया जा रहा है। राशीशों की मित्रता का महत्त्व ग्रहमैत्री-विचार में बतलाया जा चुका है। राशीशों की मित्रता दाम्पत्य प्रेम में सहायिका की भूमिका अदा करती है। अतः नाड़ी दोष न होने तथा वर-वधू के राशीशों में मित्रता होने पर भकूट दोष प्रभावहीन हो जाता है।

कुछ अन्य बातें

षडाष्टक भकूट में यदि वर एवं कन्या की राशियों के स्वामी नीच राशि या नीच नवांश में हों तो यह दोष कुछ कम हो जाता है। यदि षडाष्टक होने पर राशि स्वामियों में मित्रता हो तो दम्पति में सामान्य वैचारिक मतभेद एवं कभी-कभी झगड़ा झंझट होता है। यदि षडाष्टक

भकूट होने पर राशि स्वामियों में शत्रुता हो तो विवाह नहीं करना चाहिए। क्योंकि इस स्थिति में विवाह करने से पति-पत्नी में रोजाना के झगड़े-झंझट, स्थायी मतभेद, कलह, शत्रुता, तलाक एवं कभी-कभी मृत्यु भी हो जाती है। यदि नाड़ी दोष के साथ शत्रु षडाष्टक हो तो भी विवाह नहीं करना चाहिए। इस दोष के प्रभाववश पति-पत्नी में से एक की मृत्यु हो सकती है।

भकूट के गुण

भकूट की पूर्ण शुभता के द्योतक ७ गुण होते हैं। द्विर्द्वादश, नवपंचम एवं षडाष्टक को छोड़कर शेष भकूटों में ७ गुण मिलते हैं। दुष्ट भकूट (द्विर्द्वादश, नवपंचम एवं षडाष्टक) में राशीशों की मित्रता होने पर ४ गुण अन्यथा शून्य गुण मिलता है।

उदाहरण

नक्षत्र-मेलापक के प्रचलित उदाहरण में वर एवं कन्या के नक्षत्र क्रमशः पुष्य तथा उत्तराफाल्गुनी हैं। इन दोनों की राशियाँ कर्क एवं सिंह हैं। जो परस्पर गणना करने से दूसरे तथा बारहवें पड़ती है। अतः यहाँ द्विर्द्वादश दोष है। किन्तु इन राशियों के स्वामी चन्द्रमा एवं सूर्य नैसर्गिक मित्र हैं, तथा यहाँ नाड़ी दोष भी नहीं हैं। अतः इस द्विर्द्वादश भकूट का परिहार हो जाता है। इस स्थिति में भकूट के गुणों की संख्या ४ रहेगी, तथा भकूट दोष का परिहार होने के कारण विवाह करना अशुभ या हानिकारक नहीं होगा।

(८) नाड़ी विचार

नाड़ियाँ ३ होती हैं—१. आदि, २. मध्य एवम् ३. अन्त। व्यक्ति नाड़ी का निश्चय उसके जन्म नक्षत्र के आधार पर किया जाता है। नक्षत्रों की संख्या २७ तथा नाड़ियों की संख्या ३ है। अतः प्रत्येक नाड़ी में ९-९ नक्षत्र आते हैं। निम्नलिखित चक्र में व्यक्ति का जन्म-नक्षत्र जिस नाड़ी के नीचे

हो, उस नाड़ी से मेलापक का विचार करना चाहिए।

नाड़ी बोधक चक्र

नाड़ी	आदि	मध्य	अन्त
जन्म नक्षत्र	अश्वि, आर्द्रा,	भरणी, मृगशीर्ष	कृत्तिका, रोहिणी
	पुनर्वसु	पुष्य, पू० फा०	आश्लेषा
	उ०फा०	चित्रा, अनुराधा	मघा, स्वाति,
	हस्त, ज्येष्ठा	पूर्वाषाढा	विशाखा
	मूल, शतभिषा	धनिष्ठा	उत्तराषाढा
	पूर्वाभाद्रपद	उत्तराभाद्रपद	श्रवण रेवती

जैसे शरीर के वात, पित्त एवं कफ इन तीन दोषों की जानकारी इन तीनों की नाड़ियों द्वारा होती है। ठीक उसी प्रकार दो अपरिचित व्यक्तियों के मन की जानकारी आदि, मध्य एवम् अन्त नाड़ियों से की जा सकती है। संकल्प, विकल्प एवं प्रतिक्रिया करना मन के सहज कार्य हैं। इन तीनों की परिचायक उक्त तीन नाड़ियाँ होती हैं।

जिस प्रकार वात प्रधान व्यक्ति को वात नाड़ी चलने पर वात गुण वाले पदार्थ एवं वातावरण का सेवन वर्जित माना गया है। ठीक उसी प्रकार वर-वधू की एक नाड़ी होना मेलापक में वर्जित माना गया है। तात्पर्य यह है कि वर-कन्या की नाड़ियाँ समान हों तो उनका विवाह नहीं करना चाहिए। यदि इनकी नाड़ियाँ भिन्न हों तो विवाह करना शुभ होता है।

नाड़ी दोष एवम् उसका परिहार

भारतीय ज्योतिष में गण दोष, भकूट दोष एवं नाड़ी दोष को सर्वा-

धिक महत्त्व दिया गया है। यह इस बात से ही स्पष्ट है कि ये तीनों ३६ गुणों में से २१ गुणों का प्रतिनिधित्व करते हैं। वर्ण, वश्य, तारा, योनि एवं ग्रहमैत्री ये पाँचों मिलकर १५ गुणों का प्रतिनिधित्व करते हैं। अकेली नाड़ी के गुण ८ होते हैं, जो वर्ण, वश्य, तारा आदि की तुलना में सर्वाधिक हैं। इसलिए नाड़ी दोष को कुछ विद्वान् महादोष भी कहते हैं।

मेलापक में आदि नाड़ी के साथ आदि का, मध्य के साथ मध्य का तथा अन्त के साथ अन्त आदि का मेल अशुभ माना गया है। वर एवं कन्या दोनों की भिन्न-भिन्न नाड़ी होना दाम्पत्य सम्वन्धों में शुभता का द्योतक होता है।

भारत के अधिकांश प्रदेशों में नाड़ी दोष को काफी महत्त्व दिया जाता है, तथा नाड़ी दोष होने पर पूर्णरूपेण उपयुक्त वर-कन्या का विवाह निरस्त कर दिया जाता है। इस स्थिति में इस विषय पर गम्भीरतापूर्वक विचार करने की आवश्यकता है।

नाड़ी दोष होने पर सामान्यतया विवाह करना वर्जित माना गया है—इसमें कोई दो राय नहीं हैं। किन्तु कुछेक स्थितियों में नाड़ी दोष का परिहार हो जाने के कारण यह दोष प्रभावहीन हो जाता है। नाड़ी दोष का परिहार निम्नलिखित परिस्थितियों में होता है—

१. यदि वर एवं कन्या का जन्म एक ही नक्षत्र में हो तो निश्चित रूप से उन दोनों की एक नाड़ी होगी और प्रथम दृष्टि में यह नाड़ी दोष प्रतीत होगा। किन्तु यदि एक नक्षत्र में उत्पन्न वर एवं कन्या के नक्षत्रों के चरण भिन्न-भिन्न हों तो नाड़ी दोष का परिहार हो जाता है। उदाहरणार्थ मान लीजिए कि वर एवं वधू दोनों का जन्म पुष्य नक्षत्र में हुआ है। अतः नियमानुसार इन दोनों की मध्य नाड़ी आती है। इस स्थिति में नाड़ी दोष वनता है। किन्तु यदि वर एवं वधू दोनों का जन्म पुष्य नक्षत्र के भिन्न-भिन्न चरणों में हो तो नाड़ी दोष का परिहार हो जायेगा तथा इस स्थिति में इन दोनों का विवाह किया जा सकता है।

२. यदि वर एवं कन्या का जन्म भिन्न-भिन्न नक्षत्रों में होते हुए नाड़ी दोष हो तो उन दोनों की एक राशि होने पर इस दोष का परिहार

हो जाता है। जैसे मान लीजिए कि वर का जन्म कृत्तिका तथा वधू का जन्म रोहिणी नक्षत्र में हुआ। नियमानुसार इन दोनों की अन्त नाड़ी होने के कारण प्रथम दृष्टि में नाड़ी दोष बनता है। किन्तु इन दोनों की ही वृष राशि है। अतः नाड़ी दोष का परिहार हो जाता है। इसलिए इस स्थिति में भी विवाह किया जा सकता है।

नाड़ी के गुण

नक्षत्र मेलापक में नाड़ी के सर्वाधिक गुण होते हैं। इसकी गुण संख्या ८ है। वर एवं कन्या की भिन्न-भिन्न नाड़ी होने पर ८ गुण तथा एक नाड़ी होने पर शून्य गुण मिलता है। नाड़ी के गुण निम्नलिखित चक्र से जाने जा सकते हैं।

नाड़ीगुण बोधक-चक्र

		वर की नाड़ी		
		आदि	मध्य	अन्त
कन्या की नाड़ी	आदि	०	८	८
	मध्य	८	०	८
	अन्त	८	८	०

उदाहरण

मेलापक के प्रचलित उदाहरण में वर का नक्षत्र पुष्य है, तथा कन्या का उत्तराफाल्गुनी। नियमानुसार वर की नाड़ी मध्य तथा कन्या की नाड़ी आदि हुई। चूँकि इन दोनों की नाड़ियाँ भिन्न-भिन्न हैं। अतः नाड़ी

दोष नहीं हुआ, तथा नाड़ी मेलापक शुभ होने के कारण ८ गुण मिले। इस स्थिति में विवाह करना उचित कहना चाहिए।

नक्षत्र-मेलापक में गुण जानने की सरल रीति

नक्षत्र-मेलापक में वर्ण, वश्य, तारा, योनि, ग्रहमैत्री, गण, भकूट एवं नाड़ी इन आठों के गुण क्रमशः १, २, ३, ४, ५, ६, ७ तथा ८ होते हैं इस प्रकार नक्षत्र मेलापक गुणों की पूर्ण संख्या ३६ होती है। वर एवं कन्या के जन्म-नक्षत्रों के आधार पर पूर्वोक्त रीति से वर्ण, वश्य आदि आठों के गुण पृथक्-पृथक् जानकर उनका योग कर लेना चाहिए।

मेलापक सारिणी का उपयोग कर कुल गुणों की संख्या आसानी से जानी जा सकती है। निम्नलिखित मेलापक-सारिणी में ऊपर की पंक्ति में वर के नक्षत्र तथा वायीं ओर कन्या के नक्षत्र लिखे हुए हैं। वर एवं कन्या के नक्षत्रों की सीध में जो कोष्ठक पड़ता है, उसमें लिखे अंक कुल गुण होते हैं। जैसे वर का नक्षत्र पुष्य तथा कन्या का उत्तराफाल्गुनी (प्रथम चरण) है। इन दोनों के नक्षत्रों की सीध में पड़ने वाले कोष्ठक में २५॥ लिखा है। अतः नक्षत्र मेलापक में इन दोनों के कुल गुणों की संख्या २५॥ हुई। देखें पृष्ठ १२२—१२३

नक्षत्र-मेलापक का निर्णय

नक्षत्र-मेलापक में नाड़ी एवं भकूट शुद्ध हों तथा गुण २० या अधिक हों तो विवाह किया जा सकता है। इस स्थिति में २५ एवं इस से अधिक गुण होने पर मेलापक उत्तम होता है।

नाड़ी दोष होने पर जिन वर-कन्या की एक राशि तथा भिन्न-भिन्न नक्षत्र हों अथवा एक नक्षत्र एवं भिन्न राशियाँ हों तो उन का विवाह किया जा सकता है, बशर्ते कुल गुणों की संख्या २० से कम न हो।

भकूट दोष होने पर यदि वर-कन्या की राशि-स्वामियों में मित्रता हो, नवांश-स्वामियों में मित्रता हो अथवा दोनों की राशि का स्वामी एक ही ग्रह हो तो विवाह करना शुभ होता है, बशर्ते कुल गुणों की संख्या २० से कम न हो।

गण दोष होने पर यदि वश्य, तारा, योनि ग्रहमैत्री, भकूट एवं नाड़ी शुभ हों तो विवाह करना कल्याणप्रद होता है। गण दोष होने पर वर-कन्या दोनों के राशीशों में मित्रता हो अथवा दोनों की राशियों का स्वामी एक ही ग्रह हो तो विवाह किया जा सकता है। किन्तु इस स्थिति में कुल गुणों की संख्या २० से कम नहीं होनी चाहिए।

गण दोष, भकूट दोष एवं नाड़ी दोष होने पर तथा इन तीनों का परिहार न होने पर विवाह नहीं करना चाहिए।

यदि वर एवं वधू की राशियों के स्वामियों में शत्रुता हो तो २५ या अधिक गुण मिलने पर ही विवाह करना चाहिए। इन दोनों के राशीशों में शत्रुता होने पर नवांश स्वामियों में मित्रता हो तो विवाह किया जा सकता है, यदि कुल गुणों की संख्या २० से कम न हो।

नक्षत्र-मेलापक में न्यूनतम २० गुण मिलने पर ही विवाह करना चाहिए। यदि गुणों की संख्या २० से कम हो तो वर-वधू के वर्ग का विचार करना चाहिए।

यदि वर एवं कन्या दोनों मित्र वर्ग के हों तथा दोनों के राशीशों में भी मित्रता हो तो १८ या अधिक गुण मिलने पर भी विवाह किया जा सकता है।

अवकहड़-चक्र

नक्षत्र	अश्विनी				भरणी				कृत्तिका				रोहिणी				मृगशीर्ष				आर्द्रा				पुनर्वसु				पुष्य				अश्लेषा			
चरण	१	२	३	४	१	२	३	४	१	२	३	४	१	२	३	४	१	२	३	४	१	२	३	४	१	२	३	४	१	२	३	४	१	२	३	४
अक्षर	चू	चे	चो	ल	ली	लु	ले	हो	सु	इ	उ	ए	ओ	वा	वी	वु	वे	वो	का	की	कु	घ	ङ	छ	के	को	हा	ही	हु	हे	हो	डा	डी	डू	डे	डो

नक्षत्र	मघा				पू० फा०				उ० फा०				हस्त				चित्रा				स्वाति				विशाखा				अनुराधा				ज्येष्ठा			
चरण	१	२	३	४	१	२	३	४	१	२	३	४	१	२	३	४	१	२	३	४	१	२	३	४	१	२	३	४	१	२	३	४	१	२	३	४
अक्षर	मा	मी	मु	मे	मो	टा	टी	टु	टे	टो	पा	पी	पु	ष	ण	ठ	पे	पो	रा	री	रु	रे	रो	ता	ती	ठु	ते	तो	ना	नी	नु	ने	नो	य	यी	यु

नक्षत्र	मूल				पू० षा०				उ० षा०				श्रवण				धनिष्ठा				शत०				पू० भा०				उ० भा०				रेवती			
चरण	१	२	३	४	१	२	३	४	१	२	३	४	१	२	३	४	१	२	३	४	१	२	३	४	१	२	३	४	१	२	३	४	१	२	३	४
अक्षर	ये	यो	भा	भी	भू	ध	श	ढ़	भे	भो	जा	जी	खी	खु	खे	खो	गा	गी	गु	गे	गो	सा	सी	सु	से	सो	दा	दी	दु	थ	भु	ञ	दे	दो	च	ची

वर्ग-विचार

नक्षत्र मेलापक में वर-कन्या दोनों के गुणों की न्यूनतम संख्या २० होने पर ही विवाह करना चाहिए। यदि मेलापक में कुल गुणों की संख्या २० से कम हो तो वर्ग का विचार करना आवश्यक होता है। वर एवं कन्या दोनों मित्र वर्ग के हों तो १८ गुण मिलने पर भी विवाह किया जा सकता है, अन्यथा नहीं।

वर्ग आठ प्रकार के होते हैं—१, गरुड़, २. विडाल, ३. सिंह, ४. श्वान, ५. सर्प, ६. मूषक, ७. मृग एवं ८ मेष। वर्ग जानने के लिए वर एवं कन्या के जन्म-नक्षत्र के अनुसार अक्षर उसी तरह निकाल लेने चाहिए, जैसे कि जन्म नाम रखने के लिए निकालते हैं। जन्म-नक्षत्र से अक्षर निकालने में अवकहड़ा चक्र पृ० १२३ की सहायता ली जा सकती है।

उक्त चक्र की सहायता से जन्मनक्षत्र एवं उसके चरण के आधार पर अक्षर जानकर वर्ग का निश्चय करना चाहिए। वर्णमाला में अवर्ग, कवर्ग, चवर्ग, टवर्ग, तवर्ग, पवर्ग, यवर्ग एवं शवर्ग ये ८ वर्ग होते हैं। इनके प्रतिनिधि क्रमशः गरुड़ आदि माने गये हैं।

वर्गबोधक चक्र

वर्ग	गरुड	विडाल	सिंह	श्वान	सर्प	मूषक	मृग	मेष
अक्षर	अ	क	च	ट	त	प	य	श
	इ	ख	छ	ठ	थ	फ	र	ष
	उ	ग	ज	ड	द	ब	ल	स
	ए	घ	झ	ढ	ध	भ	व	ह
	ओ	ङ	ञ	ण	न	म		

उदाहरणार्थ मान लीजिए कि वर का जन्म पुष्य नक्षत्र के तृतीय चरण में तथा कन्या का जन्म उत्तराफाल्गुनी के प्रथम चरण में हुआ है। पुष्य नक्षत्र के तृतीय चरण में 'हो' अक्षर आता है, जो शवर्ग का अक्षर है तथा जिसका प्रतिनिधि मेष होता है। इसी प्रकार उत्तरा-

वर्ग सम्बन्धबोधक चक्र

वर्ग	समवर्ग	मित्रवर्ग	शत्रुवर्ग
गरुड	सिंह	श्वान	सर्प
विडाल	श्वान	सर्प	मूषक
सिंह	सर्प	मूषक	मृग
श्वान	मूषक	मृग	मेष
सर्प	मृग	मेष	गरुड
मूषक	मेष	गरुड	विडाल
मृग	गरुड	विडाल	सिंह
मेष	विडाल	सिंह	श्वान

फाल्गुनी के प्रथम चरण का अक्षर 'टे' होता है, जो टवर्ग में आता है तथा उसका स्वामी श्वान होता है। अतः इस उदाहरण में वर का वर्ग मेष तथा कन्या का वर्ग श्वान है।

वर एवं कन्या के वर्ग का निश्चय कर उनकी पारस्परिक मित्रता या शत्रुता आदि का विचार करना चाहिए। वर्गों के पारस्परिक सम्बन्ध ३ प्रकार के होते हैं—१. सम, २. शत्रु एवं ३. मित्र। प्रत्येक वर्ग से तीसरा उसका सम चौथा मित्र एवं पाँचवा शत्रु होता है। जैसे गरुड वर्ग का सिंह सम, श्वान मित्र एवं सर्प शत्रु होता है। वर्गों के सम, मित्र एवं शत्रु वर्ग का ज्ञान चक्र पृष्ठ १२५ से कर लेना चाहिए।

वर एवं कन्या दोनों के वर्गों में मित्रता होने पर उनके दाम्पत्य सम्बन्ध मित्रवत् रहते हैं। उन दोनों के वर्गों में शत्रुता होने पर दाम्पत्य जीवन में खटपट एवं कलह होती रहती है। उनके वर्गों में समता होने पर न तो कलह ही और न ही विशेष प्रेम होता है। इस स्थिति में दाम्पत्य सम्बन्ध औसतन या सामान्य जैसे रहते हैं। वर एवं कन्या के वर्गों में एकता होने पर उन दोनों में प्रगाढ़ स्नेह रहता है।

उदाहरण

पूर्वोक्त उदाहरण में वर का वर्ग मेष तथा कन्या का वर्ग श्वान निश्चय किया गया है। मेष एवं श्वान परस्पर शत्रु होते हैं। अतः वर्ग-मेलापक की दृष्टि से इन दोनों के वर्ग नहीं मिलते। वर एवं कन्या के वर्गों का परस्पर शत्रु होना दाम्पत्य जीवन में खटपट एवं कलह होने का द्योतक है।

इस प्रकार नक्षत्र-मेलापक में वर्ण, वश्य आदि आठों बातों का गम्भीरता पूर्वक विचार कर फिर परिस्थिति के अनुसार वर्ग का भी विचार कर विविध दोष एवं उनके परिहारों को ध्यान में रखकर नक्षत्र मेलापक का निर्णय करना चाहिए।

अध्याय सप्तम

मंगली दोष का हौआ

ग्रह मेलापक, मंगली योग क्या है ? मंगली योग कारक ग्रह, इस योग के दुष्प्रभाव में ह्रास, वृद्धि, मंगली योग का परिहार, ग्रह मेलापक की विधि एवं ग्रह मेलापक में ध्यान देने योग्य कुछ बातें।

सुखी दाम्पत्य जोवन के लिए निम्नलिखित पाँच वस्तुओं की आवश्यकता होती है—१. अच्छा स्वास्थ्य, २. भोगोपभोग की सामग्री की उपलब्धि, ३. रतिसुख, ४. अनिष्ट का अभाव तथा ५. समस्त आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अच्छी क्रय शक्ति। ज्योतिष शास्त्र में इन पाँचों वस्तुओं के प्रतिनिधि भाव लग्न, चतुर्थ, सप्तम, अष्टम तथा द्वादश माने गये हैं। लग्न से स्वास्थ्य का विचार करते हैं। चतुर्थ भाव से भोगोपभोग की सामग्री का विचार होता है। यह भाव मकान, भूमि वाहन एवं घर के उपकरण (वर्तन फर्नीचर आदि) का प्रतिनिधि भाव है। सुख एवं मनोनुकूलता का विचार भी इसी भाव से होता है। सुरति या सम्भोग का विचार सप्तम भाव से होता है। पुरुष की कुण्डली में यह भाव पत्नी का तथा स्त्री की कुण्डली में यह भाव पति का प्रतिनिधित्व करता है। अष्टम भाव जीवन में आने वाले विघ्न, वाधा,

अनिष्ट एवं मृत्यु का द्योतक है। आयु का विचार भी इसी भाव से होता है। द्वादश भाव व्यय या क्रय शक्ति का द्योतक है। इस प्रकार हम देखते हैं कि किसो की कुण्डली से उसके दाम्पत्य जीवन में आने वाले सुख या दु:ख का ज्योतिष शास्त्र की रीति से विचार करते समय इन पाँचों (लग्न, चतुर्थ, सप्तम, अष्टम एवं द्वादश) भावों को उपेक्षित नहीं किया जा सकता।

किसी भाव का फल शुभ होगा या अशुभ?—यह जानने का सर्व-मान्य नियम यह है—जो भाव अपने स्वामी या शुभग्रह से दृष्ट-युत हो तो वह जिन वस्तुओं का प्रतिनिधित्व करता है, उन की वृद्धि होती है। तात्पर्य यह है कि भाव में भाव का स्वामी या शुभ ग्रह बैठा हो अथवा भाव को उसका स्वामी या शुभ ग्रह देखता हो तो भाव का फल शुभ होता है। किन्तु यदि भाव में पापग्रह बैठा हो या पापग्रह भाव को देखता हो तो भाव का फल अशुभ होता है।[1]

सुखमय दाम्पत्य जीवन के लिए उक्त पाँच वस्तुओं की अनिवार्यता से नकार नहीं किया जा सकता। किन्तु इन पाँचों वस्तुओं से सुख तभी प्राप्त हो सकता है, जब कि इनके प्रतिनिधि भावों में न तो पापग्रह बैठे हों और नहीं इन भावों को देखते हों। यही कारण है कि ज्योतिषशास्त्र में ग्रह मेलापक के इन पाँचों भावों पर पापग्रहों के प्रभाव का विचार करने की परम्परा प्राचीन काल से आज तक चली आ रही है। वास्त-विकता यह है कि जिस व्यक्ति की कुण्डली में इन पाँचों भावों में से कोई एक या अधिक भाव पापग्रहों के प्रभाव में हों उस व्यक्ति के दाम्पत्य जीवन में सुख की हानि का योग बन जाता है।

कुण्डली में कुल १२ भाव होते हैं। तथा गोचरीय क्रम से घूमता हुआ ग्रह इन्हीं १२ भावों में से किसी भी भाव में बैठ जाता है। इस प्रकार कोई भी ग्रह, चाहे वह शुभ हो या पाप, अधिकतम १२ भावों

---

१. यो यो भावः स्वामिदृष्टियुतो वा सौम्यैर्वा स्यात्तस्य तस्याभिवृद्धिः।
पापैरेवं तस्य भावस्य हानिर्निनिर्दिष्टव्या जन्मतः प्रश्नतो वा॥ —पाराशर

में बैठ सकता है। इन भावों में से उक्त ५ भाव दाम्पत्य सुख के निर्णायक माने गये हैं। जिनमें पापग्रह के बैठने से दाम्पत्य सुख की हानि होती है। इस प्रकार यह निष्कर्ष निकलता है कि पापग्रह अपने १२ भावों के परिभ्रमण काल या भगण पूर्ति काल में से ५/१२ काल तक दाम्पत्य सुख के लिए हानिकारक होता है। ५/१२ का मान लगभग ४२ प्रतिशत होता है। अतः कहा जा सकता है कि पापग्रह अपने सम्पूर्ण भोग काल में से ४२ प्रतिशत समय तक दाम्पत्य जीवन को हानि पहुँचाता है। यदि पापग्रह के भगण भोग काल में १०० व्यक्तियों का जन्म मान लिया जाय तो उनमें से ४२ प्रतिशत लोगों का दाम्पत्य जीवन दुःखमय रहने की सम्भावना बनती है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि ५ भावों में पापग्रह की स्थिति कुल जनसंख्या के ४२ प्रतिशत को दाम्पत्य सुख से वञ्चित कर सकती है। ४२ प्रतिशत एक वहुत वड़ा भाग होता है। इतने अधिक लोगों के दाम्पत्य जीवन को इन पापग्रहों के प्रभाव से कैसे सुरक्षित किया जाय? इस प्रश्न ने प्राचीन महर्षियों एवं आचार्यों के मन को अवश्य विचलित किया होगा। हमारे ज्योतिष शास्त्र के प्रवर्तक ऋषियों एवं मनीषी आचार्यों ने वार-वार इस गम्भीर प्रश्न पर दत्तचित्त होकर विचार किया, तथा उन्होंने दाम्पत्य जीवन को प्रभावित करने वाले पापग्रहों के इस अशुभ प्रभाव से बचाव का एक तरीका खोज निकाला, जिसे ज्योतिष की भाषा में ग्रह-मेलापक कहते हैं।

ग्रह-मेलापक क्या है?

लग्न, चतुर्थ, सप्तम, अष्टम एवं द्वादश भाव में पापग्रहों की स्थिति ४२ प्रतिशत लोगों के दाम्पत्य सुख को हानि पहुँचाती है। यह स्थिति तव होती है जव हम मात्र लग्न से प्रारम्भ कर इन भावों में पापग्रहों की स्थिति की सम्भावना का विचार करते हैं। यदि चन्द्रमा से इन्हीं पाँचों भावों में तथा शुक्र से भी इन्हीं पाँचों भावों में पापग्रहों की स्थिति को दाम्पत्य सुख के लिए हानिकारक मान लिया जाय तो यह प्रतिशत

कहाँ तक वढ़ जायेगा ? इसकी आप स्वयं कल्पना कर सकते हैं। ज्योतिष शास्त्र में लग्न के समान ही चन्द्रलग्न का भी महत्त्व है। विवाह एवं दाम्पत्य सुख का प्रतिनिधि ग्रह शुक्र माना गया है। इसलिए जन्म-लग्न चन्द्रलग्न एवं शुक्र से उक्त ५ भावों में पापग्रहों के प्रभाव का विचार किया जाता है। यह प्रभाव इतना व्यापक है कि सभी लोग इस की परिधि में आ जाते हैं। इस प्रभाव को व्यवहार में मंगली दोष कहते हैं।

मंगली दोष वाले लड़के एवं लड़कियों का दाम्पत्य जीवन सुखमय हो सकता है, यदि उनका ग्रह मेलापक अच्छा हो। ग्रह-मेलापक वह विधि है, जो यह वतलाती है कि मंगली लड़के या लड़की का विवाह किस से किया जाय तथा जो लोग मंगली दोष रहित हैं, उनके भी सुखमय दाम्पत्य सम्बन्ध के लिए ग्रह-मेलापक मार्ग प्रशस्त करता है।

मंगली दोष का हौआ

हिन्दु समाज में लड़के और लड़कियों की कुण्डली मिलाते समय इस मंगलो दोष पर अधिक जोर दिया जाता है। यद्यपि लड़के के पिता इस वात से विशेष चिन्तित नहीं होते। किन्तु लड़की के माता-पिता केवल यह सुनकर ही चिन्ता में पड़ जाते हैं, कि उनकी कन्या मंगली है। इस मंगली दोष का "हौआ" इतना भयानक होता है कि कुछ लोग यह पता लगाने पर कि उन की लड़की मंगली है, नकली जन्मपत्री वनवा लेते हैं। दक्षिण भारत में इसे कुज दोष कहते हैं। तमिलनाडु एवं केरल की असंख्य लड़कियों के विवाह में देरी कराने वाला यही मंगली दोष है। वहाँ लोग इस दोष के "हौआ" से परेशान होकर वड़ी कठिनाई से किसी लड़के के पिता को सन्तुष्ट कर पाते हैं। यदि लड़के का पिता मंगली कन्या से अपने पुत्र का विवाह करने के लिए तैयार हो गया तो विवाह हो जाता है। अन्यथा पुनः नये लड़के की तलाश, उसके पिता की संतुष्टि और इस स्थिति में पुनः प्रतीक्षा। इस प्रकार असंख्य सुन्दर सुशिक्षित एवं स्वस्थ कन्याओं के विवाह में मंगली दोष का 'हौआ' विरोध या विलम्ब उत्पन्न कर रहा है।

वास्तविकता यह् है कि दाम्पत्य जीवन एवं दाम्पत्य सुख का निर्णय करने वाले अनेक महत्त्वपूर्ण तथ्यों में से मंगली दोष एक है। यह अकेला न तो दाम्पत्य जीवन को सुखमय बना सकता है, और नहीं दुःखमय। अतः लोगों को चाहिए कि वे मंगली के नाम से न घवड़ायें, तथा इसके प्रभाव का निर्णय किसी योग्य विद्वान् से करायें।

मंगली दोष क्या है ?

मंगली दोष तव माना जाता है, जब कुण्डली में लग्न, चतुर्थ, सप्तम, अष्टम या द्वादश स्थान में मंगल बैठा हो। लग्न में मंगल हो तो स्वास्थ्य पर दुष्प्रभाव पड़ता है। व्यक्ति स्वभाव से उग्र एवं जिद्दी होता है। चतुर्थ स्थान में मंगल होने पर जीवन में भोगोपभोग की सामग्री की कमी रहती है। यहाँ स्थित मंगल की सप्तम स्थान पर दृष्टि पड़ती है, जो दाम्पत्य सुख पर प्रतिकूल प्रभाव डालती है। सप्तम स्थान में स्थित मंगल दाम्पत्य सुख (रति सुख) की हानि तथा पत्नी के स्वास्थ्य को भी हानि पहुँचाता है। इस स्थान में स्थित मंगल की दशम एवं द्वितीय भाव पर दृष्टि पड़ती है। दशम स्थान आजीविका का तथा द्वितीय स्थान कुटुम्ब का होता है। अतः इस स्थान में स्थित मंगल आजीविका एवं कुटुम्ब पर भी अपना प्रभाव डालता है। अष्टम स्थान में स्थित मंगल जीवन में विघ्न, वाधा एवम् अनिष्ट कारक माना गया है। इस स्थान में स्थित मंगल कभी-कभी दम्पति में से किसी एक की मृत्यु भी कर सकता है। द्वादश स्थान में स्थित मंगल व्यक्ति क्रयशक्ति (व्यय) को प्रभावित करने के साथ सप्तम स्थान पर अपनी दृष्टि के द्वारा साक्षात् दाम्पत्य सुख को भी प्रभावित करता है।

इन पाँच स्थानों में से लग्न, चतुर्थ सप्तम एवं द्वादश स्थान में स्थित मंगल अपनी दृष्टि या युति से सप्तम स्थान को प्रभावित करने के कारण दाम्पत्य सुख के लिए हानिकारक माना गया है। अष्टम स्थान आयु का प्रतिनिधि भाव है तथा यह पत्नी का मारक (सप्तम से द्वितीय होने के कारण) स्थान होता है। अतः इस स्थान का मंगल दम्पति में से किसी

एक की मृत्यु कर सकता है। इसलिए इस स्थान में भी मंगल की स्थिति अच्छी नहीं मानी गयी। ज्योतिष शास्त्र में इन पाँचों स्थानों में से किसी एक स्थान में मंगल होने पर मंगल के पड़ने वाले दुष्प्रभाव को ही मंगली दोष कहा जाता है।

जिस प्रकार लग्न से उक्त पाँच स्थानों में मंगल होने पर मंगली योग या मंगली दोष होता है, उसी प्रकार चन्द्रलग्न एवं शुक्र से भी उक्त पाँच स्थानों में मंगल होने पर भी मंगली दोष होता है। कारण यह है कि चन्द्रलग्न का भी लग्न के समान ही महत्त्व माना गया है, तथा शुक्र विवाह एवं दाम्पत्य सुख का प्रतिनिधि ग्रह होता है।

इसलिए मंगली योग या मंगली दोष की संक्षिप्त परिभाषा यह है कि लग्न, चन्द्रलग्न या शुक्र से प्रथम, चतुर्थ, सप्तम, अष्टम या द्वादश स्थान में मंगल होने पर मंगली योग होता है।

दक्षिण भारत के ज्योतिष ग्रन्थों में लग्न के स्थान पर द्वितीय भाव का ग्रहण किया गया है। अतः वहाँ लग्न आदि से द्वितीय, चतुर्थ, सप्तम अष्टम या द्वादश स्थान में मंगल होने पर कुज दोष (मंगली दोष) माना जाता है, जैसा कि केरल शास्त्र में कहा गया है—

"धने व्यये वा पाताले जामित्रे चाष्टमे कुजे।
स्त्री भर्तुर्विनाशञ्च भर्ता च स्त्रीविनाशनम्।।

मंगलीयोग कारक ग्रह

ज्योतिष शास्त्र में मंगल, शनि, सूर्य, राहु एवं केतु को पापग्रह माना गया है। ये ग्रह नैसर्गिक रूप से पापी होते हैं। तथा अपनी दृष्टि एवं युति द्वारा किसी भी भाव के फल को नष्ट कर सकते हैं। मंगली योग में प्रमुख बात यह मानी गयी है कि लग्न, चतुर्थ, सप्तम, अष्टम एवं द्वादश स्थान पर पाप प्रभाव पड़ने से स्वास्थ्य, भोगोपभोग के साधन, रतिसुख, अनिष्ट का प्रभाव एवं क्रयशक्ति का ह्रास होता है। जो अन्ततोगत्वा दाम्पत्यसुख को नष्ट कर देता है।

इसलिए जिस प्रकार उक्त पाँच स्थान में मंगल होने पर दाम्पत्य-

सुख को हानि पहुँचने की सम्भावना बनती है, ठीक उसी प्रकार इन पाँच स्थानों में शनि, सूर्य, राहु या केतु होने पर भी दाम्पत्य सुख को हानि पहुँच सकती है। यही कारण है कि ज्योतिष शास्त्र में मनीषी आचार्यों ने मंगल, शनि, सूर्य, राहु एवं केतु इन पाँचों ग्रहों को मंगली योग कारक मान लिया है।

मंगली योग के दुष्प्रभाव में ह्रास-वृद्धि

मंगली दोष लग्न, चन्द्रमा या शुक्र से प्रथम, चतुर्थ, सप्तम, अष्टम या द्वादश स्थान में पापग्रह होने पर होता है। किन्तु इस योग का प्रभाव सदैव एक-सा नहीं रहता, अपितु इस में ह्रास-वृद्धि होती रहती है।

हमारी राय में जब यह योग लग्न से बनता है तो इस का दुष्प्रभाव अपेक्षाकृत कम या कमजोर होता है। इस की तुलना में चन्द्रमा से मंगली योग होने पर इस का दुष्प्रभाव अधिक होता है, तथा शुक्र से यह योग होने पर इसका दुष्प्रभाव सर्वाधिक होता है। कारण यह है कि लग्न शरीर का, चन्द्रमा मन का तथा शुक्र रति का प्रतिनिधित्व करता है। दाम्पत्य सम्बन्धों को शरीर की तुलना में मन या स्वभाव ज्यादा प्रभावित कर सकता है तथा इन दोनों की तुलना में रतिसुख सर्वाधिक महत्त्व रखता है, अस्तु।

यह योग मंगल, शनि, सूर्य, राहु एवं केतु इन पाँच ग्रहों से बनता है। पापग्रहों में मंगल, शनि, सूर्य, राहु एवं केतु उत्तरोत्तर कम पापी माने गये हैं। अतः मंगल से बनने वाले योग की तुलना में शनि से बनने वाला योग कुछ कम प्रभाव डालता है। इसी प्रकार सूर्य राहु एवं केतु से बनने वाले योग भी उत्तरोत्तर कम प्रभावशाली होते हैं। इसलिए यह कहा जा सकता है कि मंगल, शनि, सूर्य, रा एवं केतु इन ग्रहों से बनने वाले योगों का दुष्प्रभाव उत्तरोत्तर कम होता जाता है। इस प्रकार मंगल से बनने वाले योग का दुष्प्रभाव सर्वाधिक तथा केतु से बनने वाले योग का सब से कम होता है।

मंगली योग लग्न, चतुर्थ, सप्तम, अष्टम एवं द्वादश स्थान में पाप-

ग्रहों के बैठने से बनता है। सप्तम स्थान साक्षात् दाम्पत्य सुख का प्रतिनिधित्व करता है। अतः इस स्थान में पापग्रह होने पर यह योग अधिकतम हानिकारक होता है। इसकी तुलना में लग्न में पापग्रह होने पर इस योग के दुष्प्रभाव की मात्रा कुछ कम हो जाती है। इस से कम दुष्प्रभाव चतुर्थ स्थान में पापग्रह होने पर, उस से भी कम दुष्प्रभाव अष्टम स्थान में पापग्रह होने पर तथा सब से कम दुष्प्रभाव बारहवें स्थान में पापग्रह होने पर होता है। अतः कहा जा सकता है कि सप्तम, लग्न, चतुर्थ, अष्टम एवं व्यय स्थानों में पापग्रह होने से बनने वाले मंगली योगों का दुष्प्रभाव उत्तरोत्तर कम हो जाता है।

ज्योतिष शास्त्र का एक सर्वमान्य नियम यह है कि स्वराशि, मूलत्रिकोण राशि, उच्च राशि तथा मित्र राशि में स्थित ग्रह भाव का नाश नहीं करता, बल्कि वह भाव के फल की वृद्धि करता है। किन्तु नीचराशि या शत्रुराशि में स्थित ग्रह भाव को नष्ट कर देता है।[1] अतः मंगली योग ग्रह स्वराशि मूल त्रिकोण राशि या उच्चराशि में होने पर दोषदायक नहीं होता। किन्तु इस योग के बनाने वाला ग्रह नीचराशि या शत्रुराशि में हो तो अधिक दोषदायक होता है।

हमारा अनुभव है कि लग्न, चतुर्थ एवं सप्तम स्थान में पापग्रहों से बनने वाला योग तथा लग्न, चतुर्थ, सप्तम, अष्टम एवं द्वादश स्थान में मात्र मंगल या शनि से बनने वाला योग दाम्पत्य जीवन में अशुभ परिणाम पैदा करने का सामर्थ्य रखता है। किन्तु इस से भिन्न स्थिति में बनने वाले योग का दाम्पत्य जीवन में बहुत कम या तात्कालिक प्रभाव पड़ता है।

मंगली योग का परिहार

ग्रहमेलापक की रीति पर प्रकाश डालने से पूर्व हम यह बतला देना

---

१. "नीचस्थो रिपुराशिस्थः खेटो भावविनाशकः।
मूलस्वतुङ्गमित्रस्थो भाववृद्धिकरो भवेत्॥
जातक पारिजात अ० ११। श्लो० ३।

चाहते हैं, कि कुछ परिस्थितियों में मंगली दोष प्रभावहीन हो जाता है। जो योग मंगली दोष को प्रभावहीन कर देते हैं, वे इसके परिहार योग कहे जाते हैं।

ज्योतिष शास्त्र के प्राय: सभी मानक ग्रन्थों में मंगली योग के परिहार का उल्लेख मिलता है। परिहार योग भी आत्म कुण्डलीगत एवं पर कुण्डलीगत भेद से दो प्रकार के होते हैं। वर या कन्या की कुण्डली में मंगली योग होने पर उसी की कुण्डली का जो योग मंगली दोष को निष्फल कर देता है, वह परिहार योग आत्म कुण्डलीगत कहलाता है। तथा वर या कन्या इन दोनों में से किसी एक की कुण्डली में मंगली योग का दुष्प्रभाव दूसरे की कुण्डली के जिस योग से दूर हो जाता है, वह परकुण्डलीगत परिहार योग कहा जाता है, इन परिहार योगों में से कुछ महत्त्वपूर्ण एवम् अनुभूत योग इस प्रकार हैं—

(क) कुण्डली में लग्न आदि ५ भावों में से जिस भाव में भौमादि ग्रह के बैठने से मंगली योग बनता हो, यदि उस भाव का स्वामी बलवान् हो तथा उस भाव में बैठा हो या देखता हो साथ ही सप्तमेश या शुक्र त्रिक स्थान में न हो तो मंगली योग का अशुभ प्रभाव नष्ट हो जाता है।[1]

(ख) यदि मंगल शुक्र की राशि में स्थित हो तथा सप्तमेश बलवान् होकर केन्द्र त्रिकोण में हो तो मंगलीदोष प्रभावहीन हो जाता है।[2]

(ग) वर कन्या में से किसी एक की कुण्डली में मंगली योग हो तथा दूसरे की कुण्डली में लग्न, चतुर्थ, सप्तम, अष्टम या द्वाद्वश स्थान में शनि हो तो मंगली दोष दूर हो जाता है।[3]

(घ) वर कन्या में से किसी एक की कुण्डली में मंगली योग हो तथा दूसरे की कुण्डली में मंगली योग कारक भाव में कोई पापग्रह हो तो मंगली

---

१. देखिए—प्रश्नमार्ग, भाग २।

२. भावदीपिका, श्लो० ११५।

३. जामित्रे च यदा सौरिर्लग्ने वा हिबुके उथवा।
अष्टमे द्वादशे वाऽपि भौमदोष विनाशकृत्॥

दोष नष्ट हो जाता है।[१]

(ङ) जिस कुण्डली में मंगली योग हो यदि उस में शुभग्रह केन्द्र त्रिकोण में तथा शेष पापग्रह त्रिषडाय में हो तथा सप्तमेश सप्तम स्थान में हो तो भी मंगली योग प्रभावहीन हो जाता है।[२]

(च) मंगली योग वाली कुण्डली में बलवान् गुरु या शुक्र के लग्न या सप्तम में होने पर अथवा मंगल के निर्बल होने पर मंगली योग का दोष दूर हो जाता है।[३]

(छ) मेष लग्न में स्थित मंगल, वृश्चिक राशि में चतुर्थ भाव में स्थित मंगल, वृषभराशि में सप्तम स्थान में स्थित मंगल, कुम्भ राशि में अष्टम स्थान में स्थित मंगल तथा धनुराशि में व्यय स्थान में स्थित मंगल मंगली दोष नहीं करता।[४]

(ज) मेष या वृश्चिक का मंगल चतुर्थ स्थान में होने पर कर्क या मकर का मंगल सप्तम स्थान में होने पर मीन का मंगल अष्टम स्थान में होने पर तथा मेष या कर्क का मंगल व्यय स्थान में होने पर मंगली दोष नहीं होता।

(झ) जिस कुण्डली में सप्तमेश या शुक्र बलवान् हों तथा सप्तम भाव इनसे युत-दृष्ट हो उस कुण्डली में मंगली दोष हो तो वह नष्ट हो जाता है।

(ञ) यदि मंगली योग कारक ग्रह स्वराशि मूल त्रिकोण राशि या

---

१. शनि भौमोऽथवा कश्चित् पापो वा तादृशो भवेत्।
तेष्वेव भवनेष्वेव भौम-दोषः-विनाशकृत्॥

२. केन्द्र त्रिकोणे शुभाढ्ये च त्रिषयायेऽप्पसद्ग्रहाः।
तदा भौमस्य दोषो न भदने मदपस्तथा॥

३. सबले गुरौ भृगौ वा लग्ने द्यूनेऽपि वाऽथवा भौमे।
वक्रिणि नीचगृहे वार्क्कस्थेऽपि वा न कुजदोषः॥

४. अजे लग्ने व्यये चापे पाताले वृश्चिके स्थिते।
वृषे जाये घटे रन्ध्रे भौमदोषो न विद्यते॥

उच्चराशि में हो तो मंगली दोष स्वयं समाप्त हो जाता है।

हमारा अनुभव है कि जब किसी लड़की या लड़के की कुण्डली में शुक्र एवं सप्तमेश बलवान् होकर शुभ स्थान में स्थित हों तथा सप्तम भाव पर किसी भी शुभ ग्रह की दृष्टि हो तो उस कुण्डली में मंगली दोष प्रभावहीन हो जाता है। इस स्थिति में मंगली दोष से किसी भी प्रकार की हानि की आशंका नहीं करनी चाहिए।

इसी प्रकार जब किसी की कुण्डली में मंगली योग कारक ग्रह एवं शुक्र पर शुभग्रहों का प्रभाव हो तो भी मंगली योग दाम्पत्य जीवन पर किसी प्रकार का दुष्प्रभाव नहीं डाल पाता। हमारी राय में मंगली योग देखकर किसी प्रकार के वहम या चिन्ता में नहीं पड़ना चाहिए, अपितु कुण्डली में सप्तम भाव, सप्तमेश एवं शुक्र की स्थिति तथा उन पर पड़ने वाले शुभ या अशुभ प्रभाव का ध्यानपूर्वक अध्ययन करना चाहिए। हमने अनेक जगह देखा है कि मंगली योग न होने पर भी मात्र सप्तम भाव, सप्तमेश एवं शुक्र पर पापग्रहों का कुप्रभाव होने से दाम्पत्य जीवन दुःखमय बन गया।

मेलापक का कार्य करने वाले ज्योतिषी बन्धुओं से मैं एक बात विशेष रूप से कहना चाहता हूँ कि वे "**भावात्भावपतेश्च कारकवशात्तत्तद् फलं चिन्तयेत्**" इस नियम का उपयोग ग्रह मेलापक में करके देखें। मेरा विश्वास है कि यह नियम उनके समक्ष मंगली दोष या दाम्पत्य जीवन के बारे में उठने वाली आशंकाओं का यथार्थ रूप से समाधान करेगा।

ग्रह मेलापक की रीति

"जैसे जहर को जहर ही मारता है या काँटा काँटे से ही निकलता है; ठीक उसी प्रकार मंगली योग वाले लड़के या लड़की का विवाह मंगली योग वाली लड़की या लड़के से करने पर इस योग का अशुभ फल नष्ट हो जाता है"—यह तथ्य ज्योतिष समाज में सर्वाधिक प्रचलित है। आज प्रायः सभी ज्योतिषी मेलापक में इस नियम का उपयोग करते हैं। किन्तु यह नियम ऐकान्तिक दोष से मुक्त नहीं है। अतः इस की स्पष्ट

व्याख्या करना आवश्यक है।

मंगली लड़के या लड़की की शादी मंगली लड़की या लड़के से करना यह एक सामान्य नियम है, जो कुछ परिस्थितियों में ठीक रहता है तथा कुछ विशेष परिस्थितियों में इसका उपयोग दु:खदायी भी हो जाता है। जिज्ञासु पाठकों की जानकारी के लिए मैं इसके दु:खदायी पहलू को स्पष्ट कर देना चाहता हूँ, ताकि ग्रह मेलापक में इसका समुचित प्रयोग किया जा सके।

इस नियम के उपयोग में ध्यान रखने योग्य एक बात यह है कि जिन वर एवं कन्या में से किसी एक की कुण्डली में सप्तम स्थान में मंगल हो तथा दूसरे की कुण्डली में अष्टम स्थान में मंगल हो और मंगली योग का कोई परिहार न मिलता हो तो उन दोनों का आपस में विवाह नहीं करना चाहिए। सामान्य दृष्टि में इन दोनों के मंगली होने के कारण उक्त नियमानुसार इनका विवाह किया जा सकता है। किन्तु यहाँ ध्यान देने योग्य बात यह है कि दाम्पत्य-सूत्र में बँधने वाले इस युगल में से एक की कुण्डली में सप्तम स्थान में स्थित मंगल दूसरे के लिए हानिकारक है। तथा दूसरे की कुण्डली में अष्टम स्थान में स्थित मंगल भी उसी को हानिकारक है। इस प्रकार दूसरे व्यक्ति पर ही दोनों के मंगल का दुष्प्रभाव पड़ रहा है। प्रथम व्यक्ति मंगल के प्रभाव से प्राय: बच रहा है। इस स्थिति में यदि इन दोनों का विवाह कर दिया जाय तो दूसरे (अष्टम स्थान में मंगल वाले) व्यक्ति के जीवन को भी खतरा पैदा हो सकता है। अस्तु।

इस नियम का उपयोग करते समय एक और बात का ध्यान रखना चाहिए कि जिन युगलों की कुण्डली में समान भाव में मंगल हो उनका भी परस्पर विवाह करना हानिप्रद होता है। उदाहरणार्थ मान लीजिए कि लड़की एवं लड़के दोनों की कुण्डली में मंगल लग्न में बैठा है। ये दोनों ही मंगली हैं। अत: उक्त नियमानुसार इन दोनों का विवाह किया जा सकता है। किन्तु लग्न में स्थित मंगल स्वास्थ्य, स्वभाव एवं दाम्पत्य सुख को हानिकारक होता है। अत: यदि इन दोनों का विवाह कर दिया

गया तो इन दोनों का ही स्वास्थ्य खराब होने, स्वभाव में जिद्दीपन एवं चिड़चिड़ापन रहने की सम्भावना है। इस प्रकार अन्ततोगत्वा इन के जीवन में दाम्पत्य सुख की हानि होगी।

इसलिए हमारी राय में जिन युगलों की कुण्डली में एक के सप्तम में मंगल तथा दूसरे के अष्टम में मंगल हो उन दोनों के मंगली होने पर भी विवाह नहीं करना चाहिए। तथा जिन युगलों की कुण्डली में मंगल समान भाव में स्थित हो उनको भी विवाह की स्वीकृति नहीं देनी चाहिए। इन दोनों स्थितियों के अलावा अन्यत्र उक्त नियम का उपयोग किया जा सकता है।

मेलापक में अन्य ध्यान देने योग्य बातें

सुखमय दाम्पत्य जीवन के लिए मेलापक की अनिवार्यता पर ज्योतिष शास्त्र के सभी आचार्यों ने जोर दिया है। किन्तु कुछ ऐसी भी परिस्थितियाँ होती हैं, जहाँ मेलापक मिलाने की कोई आवश्यकता नहीं होती। इन्हें मेलापक का अपवाद कहा जा सकता है। निम्नलिखित ६ परिस्थितियों में मेलापक का विचार नहीं करना चाहिए। ये परिस्थितियाँ हैं—

(क) जब किसी कन्या के विवाह के साथ कोई शर्त जुड़ी हो तो विवाह से पूर्व मेलापक की आवश्यकता नहीं होती जैसे कन्या के विवाह के लिए वर का चुनाव करते समय यह शर्त लगा दी जाये कि जो व्यक्ति मत्स्यवेध, चक्रवेध या धनुष भंग करेगा, उसके साथ कन्या का विवाह कर दिया जायेगा। इस स्थिति में मेलापक का विचार नहीं करना चाहिए।

(ख) युद्ध में प्राप्त या अपहृत कन्या के साथ मेलापक मिलाने की आवश्यकता नहीं होती।

(ग) कन्या के पिता के द्वारा स्वेच्छया प्रेमपूर्वक या उपहार में दी गयी कन्या के साथ विवाह करने के लिए मेलापक विचारने की आवश्यकता नहीं होती।

(घ) यदि कन्या स्वयं किसी पुरुष का वरण कर ले तो उसके साथ

विवाह करने के लिए मेलापक का विचार करना अनिवार्य नहीं होता। इस स्थिति में प्रस्ताव स्वयं कन्या की ओर से होना चाहिए।

(ङ) पुनर्विवाह में भी मेलापक का विचार करना अनिवार्य नहीं होता। पुनर्विवाह में मेलापक का विचार ऐच्छिक माना गया है।

(च) ५० वर्ष या अधिक आयु के पुरुष तथा ४५ या अधिक आयु की कन्या का विवाह करते समय भी मेलापक मिलाना अनिवार्य नहीं होता।

उक्त ६ परिस्थितियों के अलावा शेष सभी अवस्थाओं में मेलापक मिलाकर ही विवाह करना चाहिए। महर्षि याज्ञवल्क्य के अनुसार यह छूट परिस्थितिगत अपरिहार्यता को ध्यान में रख कर दी गयी, ताकि लोग इन अपरिहार्यता या विषमताओं में भी सार्वजनिक तौर पर दाम्पत्यसूत्र में बँध सकें।

ग्रह-मेलापक का विचार करते समय वर एवं वधू की दशान्तर्दशा के क्रम में पूरकत्व भाव का ध्यान रखना चाहिए। विशेषकर भाग्य, प्रगति, धन प्राप्ति एवं अनिष्ट योग कारक ग्रहों की दशान्तर्दशाओं को ध्यानपूर्वक देख लेना चाहिए।

अध्याय अष्टम

विवाह कब होगा ?

विवाह में बाधक योग, विवाह में देरी होने के योग, विवाह न होने के योग, विवाह काल का निर्णय, बाल विवाह के योग, उचित समय पर विवाह के योग, वृद्धावस्था में विवाह के योग ।

विवाह कितने होंगे ? एक विवाह का योग, दो विवाह के योग, तीन विवाह के योग तथा पुनर्विवाह के योग ।

मेलापक का विचार करने के साथ-साथ यह प्रश्न सामने आता है कि इस लड़की या लड़के का विवाह कब होगा ? विवाह में बाधक या विलम्बकारक योग होने पर अनेक बार विवाह के प्रस्ताव टल जाते हैं। अतः मेलापक का विचार करने के साथ-साथ विवाह काल का भी निर्णय कर लेना चाहिए।

हर लड़की या लड़के के माता-पिता या अभिभावक को यह जानने की इच्छा रहती है कि उनके बच्चों का विवाह कब होगा ? कुछ उम्र चढ़ जाने पर यह जिज्ञासा और भी तीव्रतर हो जाती है। इस स्थिति में यह प्रश्न ज्योतिषियों के पास पहुंच जाता है । अतः सामान्य रूप से भी इस प्रश्न पर विचार करना अपना एक विशेष महत्त्व रखता है।

विवाह-काल वह समय है, जब दो अपरिचित युगल दाम्पत्यसूत्र में

बंधकर एक नये जीवन का प्रारम्भ करते हैं। दाम्पत्य सम्बन्ध का प्रारंभ इसी समय होता है। वस्तुतः यह जिन्दगी का एक मार्मिक मोड़ है, जहां से आगे के रास्ते में उतार भी आ सकता है तथा चढ़ाव भी। यद्यपि इस मार्ग का एक धूमिल या काल्पनिक नक्शा हर नवयुवक एवं नवयुवति के मस्तिष्क में होता है। किन्तु वह इस मार्ग का अनजान पथिक होने के कारण इस विषय में पूरा ज्ञान नहीं रखता और इसलिए वह कल्पना के सागर में, डूबता उतरता है। इस स्थिति में अपनी मंजिल, मार्ग तथा रास्ते में घटने वाली घटनाओं की जानकारी के बावत उस में एक सहज उत्सुकता होती है तथा इस उत्सुकता या जिज्ञासा का समयवद्ध समाधान ज्योतिष शास्त्र से मिलता है। ज्योतिशास्त्र न केवल विवाह काल ही का निर्णय करता है। अपितु दाम्पत्य सम्बन्ध का भी।

मनुष्य की यह मूल प्रवृत्ति है कि वह अकेला नहीं रह सकता। वह किसी न किसी के साथ रहना चाहता है और रहता भी है। वपचने में नये साथी एवं मित्रों की तलाश में रहता है, तथा किशोरावस्था आते ही उसका रुझान विपरीत योनि के प्रति होने लगता है। युवावस्था में आते ही वह एक ऐसे साथी को चाहने लगता है।

विवाह कब होगा ?

विवाह कव होगा ? इस प्रश्न पर विचार एवं इसका समाधान ज्योतिष शास्त्र के मनीषी विद्वानों ने प्राचीनतम समय में ही कर लिया था। प्राचीन संहिता एवं जातक ग्रन्थों में विवाहकाल का विवेचन विस्तार पूर्वक किया गया है, तथा योग, दशा एवं गोचरीय ग्रह-स्थिति इन तीनों के आधार पर विवाह होने के समय का निर्धारण किया गया है। किन्तु कभी-कभी विवाह के योग, दशा एवं अनुकूल गोचरीय परिभ्रमण के द्वारा विवाहकाल का निश्चय करने पर भी वह यथार्थ रूप में घटित नहीं होता, जबव्यक्तिकी कुण्डली में विवाह में वाधकया विलम्ब कारक योग होते हैं। अतः विवाहकाल का निर्णय करने से पूर्व इन योगों का विचार कर लेना चाहिए।

विवाह में बाधक या विलम्ब कारक योग

यदि लड़के या लड़की की कुण्डली में निम्नलिखित योगों में से कोई भी योग दिखलायी दें तो उसके विवाह में कथित वर्ष की आयु तक बाधा या देरी होती है :—

१. चन्द्रमा से ७ वें स्थान में शुक्र हो तथा उस राशि का स्वामी ११ वें स्थान में हो तो २७ वर्ष की आयु में विवाह होता है।

२. भाग्य स्थान से सप्तम (तृतीय भाव) में शुक्र हो तथा सप्तमेश भाग्य स्थान में हो तो ३० वर्ष की आयु में विवाह होता है।

३. अष्टमेश अष्टम स्थान में हो तथा लग्नेश एवं शुक्र साथ-साथ हों तो ३३ वर्ष की आयु में विवाह होता है।

४. तृतीय स्थान में शुक्र तथा द्वितीय स्थान में राहु होने पर ३१ या ३४ वर्ष की आयु में विवाह होता है।

५. सप्तमेश पाप ग्रह के साथ त्रिकोण में तथा शुक्र पाप ग्रह के साथ द्वितीय स्थान में हो तो विवाह ३५ वर्ष की आयु में होता है।

६. लग्न, द्वितीय एवं सप्तम स्थान में नीच या शत्रु राशि में पाप ग्रह हों तो विवाह देरी से होता है।

७. लग्नेश या सप्तम स्थान से सप्तमेश ५ या ६ राशि के अन्तर पर हो तो विवाह विलम्ब से होता है।

८. धन स्थान में शुक्र हो और धनेश मंगल के साथ हो तो २७ वर्ष तक विवाह में बाधा आती है।

९. सप्तम स्थान की राशि के नवांश में लग्नेश हो तथा सप्तमेश १२ वें स्थान में हो तो २६ या २८ वर्ष की आयु में विवाह होता है।

१०. लग्न में जिस राशि का नवांश हो उसमें शुक्र हो तथा अष्टम भाव में जिस राशि का नवांश हो वह राशि सप्तम भाव में हो तो ३३ वर्ष की आयु में विवाह होता है।

११. पंचम भाव में शुक्र, चतुर्थ में राहु तथा सप्तम में शनि हो तो ३० या ३२ वर्ष की आयु में विवाह होता है।

उक्त ११ योग विवाह में देरी या रुकावट करने वाले माने गये हैं। इसके अलावा कुछ ऐसे योग भी होते हैं, जिनके प्रभाववश व्यक्ति का विवाह ४० वर्ष से ६० वर्ष की आयु के बीच होता है। इन योगों का विवेचन आगे "वृद्धावस्था में विवाह के योगों" का विचार करते समय किया जायेगा।

विवाह न होने के योग

(१) जिस व्यक्ति की कुण्डली में सप्तमभाव सप्तमेश एवं शुक्र पापाक्रान्त हो, द्वितीयेश त्रिक स्थान में हो उसका विवाह नहीं होता।

(२) सप्तमेश एवं शुक्र निर्बल या अस्तंगत हों तथा सप्तम में शनि एवं राहु हों तो विवाह नहीं होता। किन्तु इस व्यक्ति का किसी न किसी के साथ योनि-सम्बन्ध अवश्य रहता है।

(३) लग्न, द्वितीय एवं सप्तम इन तीनों स्थानों में पापग्रह हो, उन पर शुभ ग्रहों की दृष्टि न हो तो व्यक्ति विधिवत् विवाह नहीं करता।

(४) सूर्य, चन्द्रमा एवं शुक्र तीनों एक नवांश में तथा त्रिक् स्थान में हो तो व्यक्ति विवाह नहीं करता। किन्तु वह व्यभिचारी होता है।

उक्त योगों का विचार करते समय यह ध्यान में रखना चाहिए कि योग कारक ग्रहों पर किसी शुभ ग्रह की दृष्टि तो नहीं है। क्योंकि इन योगों को बनाने वाले ग्रहों पर शुभ ग्रहों की दृष्टि होने से ये योग प्रभाव हीन हो जाते हैं, तथा इस स्थिति में विवाह होने की सम्भावना बन जाती है।

बाल विवाह के योग

ज्योतिष शास्त्र की मान्यता के अनुसार १८ वर्ष से छोटी आयु के लड़के एवं लड़कियों का विवाह बाल विवाह कहलाता है। इस उम्र के लड़के एवं लड़कियों के शरीर तथा मस्तिष्क का पूर्ण विकास नहीं हो पाता। इस दृष्टि से इन्हें बालक मानना उचित ही है। बाल्यावस्था में विवाह होने के योगों में कुछ प्रमुख योग निम्नलिखित है :—

(१) जिसकी कुण्डली में लग्नेश सप्तम स्थान में हो तथा शुक्र केन्द्र में हो उसका ११ वर्ष की उम्र में विवाह होता है।

(२) सप्तमेश शुभ ग्रह की राशि में हो तथा शुक्र स्वराशि या उच्च राशि में हो तो ९ वें वर्ष में शादी हो जाती है।

(३) सप्तम स्थान में सूर्य होने पर तथा सप्तमेश के साथ शुक्र होने पर ११ वें वर्ष में शादी हो जाती है।

(४) लग्न द्वितीय या सप्तम स्थान में शुभ ग्रह तथा शुभ ग्रहों का वर्ग होने पर बाल्यावस्था में विवाह होता है।

(५) द्वितीयेश शुक्र हो तथा सप्तमेश जल संज्ञक (कर्क, मकर, कुम्भ या मीन) राशि हो तो १० या १६ वर्ष की आयु में विवाह होता है।

(६) लग्न से केन्द्र में शुक्र तथा उससे सप्तम में चन्द्रमा होने पर १२ या १९ वें वर्ष में विवाह होता है।

(७) सप्तम स्थान में स्थित शुक्र पर शुभ ग्रहकी दृष्टि हो या सप्तम स्थान में स्थित सप्तमेश पर गुरु की दृष्टि हो तो १२ साल की उम्र में विवाह हो जाता है।

(८) द्वितीयेश एकादश स्थान में हो तथा सूर्य द्वितीय स्थान में हो तो १३ वर्ष की आयु में शादी हो जाती है।

(९) सप्तम स्थान का स्वामी लाभ स्थान में तथा लग्नेश दशम स्थान में होने पर व्यक्ति का प्रायः १५ साल के आसपास की आयु में विवाह हो जाता है।

(१०) चन्द्रमा से ७ वें स्थान में शुक्र तथा उससे ७ वें स्थान में शनि होने पर १८ वें वर्ष में विवाह हो जाता है यदि योग कारक ग्रहों पर पाप ग्रहों की दृष्टि न हो।

(११) सप्तमेश लाभ स्थान में हो तथा शुक्र धन स्थान में हो तो १० या १६ साल की उम्र में शादी हो जाती है।

(१२) धनेश ११ वें स्थान में हो तथा लग्नेश १० वें स्थान में हो तो १५ साल की उम्र में विवाह होता है।

(१३) धनेश लाभ स्थान में तथा लाभेश धन स्थान में हो तो १३

वर्ष की आयु में शादी होती है।

बाल्यावस्था में विवाह के उक्त योगों का विचार करते समय ग्रहों के बल तथा उन पर पापप्रभाव का विशेष ध्यान रखना चाहिए। कारण यह है कि पाप प्रभाव से रहित और बलवान् ग्रह ही अपना फल दे पाता है। इसलिए यदि उक्त योग कारक ग्रह बलहीन हो अथवा पापाक्रान्त, पापयुक्त या पापदृष्ट हो तो योग होने पर भी बाल्यावस्था में विवाह नहीं हो पाता। इस स्थिति में योग के फल में बतलाये गये वर्ष में उसके विवाह की चर्चा चलती है। किन्तु विवाह नहीं हो पाता।

इस प्रसंग में एक और ध्यान रखने योग्य बात यह है कि मंगली योग होने पर भी बाल विवाह योग अपना फल नहीं दिखा पाता है।

उचित आयु में विवाह होने के योग

ज्योतिष शास्त्र के आचार्यो के मतानुसार १८ से २५ वर्ष की आयु विवाह के लिए उचित मानी गयी है। इस उम्र में लड़की एवं लड़के किशोर अवस्था को पार कर युवावस्था की देहली पर पैर रख चुके होते हैं। विपरीत योनि के प्रति सर्वाधिक आकर्षण इसी उम्र में होता है। अतः इस आयु में विवाह करना सर्वथा उचित ही है। इस आयु में विवाह होने के कुछ अनुभूत योग इस प्रकार हैं—

(१) जिस व्यक्ति की कुण्डली में बलवान् सप्तमेश किसी शुभ ग्रह के साथ लग्न, द्वितीय, सप्तम या एकादश स्थान में हो उसका विवाह उचित समय पर हो जाता है।

(२) जिसकी कुण्डली में सप्तमेश बलवान् हो तथा शुक्र केन्द्र या त्रिकोण में हो तो जातक का विवाह यथा समय होता है।

(३) जिसके जन्मकाल में शुक्र द्वितीय भाव में हो तथा लाभेश लाभ स्थान में हो, उसका विवाह यथाशीघ्र हो जाता है।

(४) जिसके जन्म के समय पाप प्रभाव रहित शुक्र, चन्द्रमा से ७ वें स्थान में मित्र राशि में हो उसका विवाह यथासमय होता है।

(५) जिसकी कुण्डली में शुक्र केन्द्र या त्रिकोण में हो तथा उससे

सप्तम में शनि हो तो कुछ रुकावटों के बावजूद भी यथासमय विवाह हो जाता है।

(६) बलवान् सप्तमेश पारावत आदि शुभ वर्ग में हो तथा शुक्र लग्न, द्वितीय, सप्तम या एकादश स्थान में हो तो विवाह में बाधा नहीं आती तथा उचित समय पर विवाह हो जाता है।

(७) विवाह में विलम्बकारक योग न हो तथा शुभ ग्रह लग्न या सप्तम भाव के समीप[1] में हों तो भी यथासमय विवाह हो जाता है।

(८) विवाह में विलम्ब कारक योग न हो तथा सप्तमेश सप्तम स्थान के समीप हो तो भी विवाह यथासमय हो जाता है।

यथासमय विवाह होने के उक्त योगों का विचार करते समय लग्न, सप्तम उसके स्वामी, शुक्र तथा योग कारक ग्रह—इन सब के बलाबल का विचार अवश्य कर लेना चाहिए। क्योंकि नीच राशिगत शत्रु राशि गत या अस्तंगत ग्रह अपना फल यथासमय नहीं दे पाता। ऐसे ग्रह का फल कभी-कभी विलम्ब से मिलता है और कभी-कभी नहीं भी मिलता, अस्तु।

वृद्धावस्था में विवाह होने के योग

जातक ग्रन्थों में वृद्धावस्था में विवाह होने के योगों का यत्र तत्र उल्लेख मिलता है। हमारा अनुभव है कि सप्तम भाव, सप्तमेश एवं शुक्र इनके निर्बल होने पर तथा इन पर राहु या शनि का प्रभाव होने पर विवाह में काफी विलम्ब होता है। इस स्थिति में ३६ वर्ष से कम की आयु में विवाह नहीं हो पाता तथा ग्रहों के बलाबल एवं पाप प्रभाव के अनुसार विवाह का योग ३६ से ६० वर्ष के भीतर भिन्न-भिन्न समय कभी भी बन जाता है।

कुछ लोगों का दूसरा या तीसरा विवाह वृद्धावस्था में होता है।

---

१. भाव एवं ग्रह में एक राशि या ३० अंश से कम का अन्तर होने पर वे परस्पर समीप होते हैं।

किन्तु उनके इस प्रकार के विवाह को पुनर्विवाह मानना चाहिए तथा उसका विचार पुनर्विवाह के योगों के आधार पर करना चाहिए। वृद्धावस्था में विवाह का योग अपने प्रभाववश पहली शादी ही वृद्धावस्था में करता है।

वृद्धावस्था में विवाह होने के कतिपय अनुभूत योग इस प्रकार हैं:—

(१) यदि लग्नेश, सप्तमेश एवं शुक्र निर्बल हो तथा स्थिर राशि में हो किन्तु चन्द्रमा चरराशि में हो तो वृद्धावस्था में विवाह होता है।

(२) लग्न एवं सप्तम में राहु तथा शनि हों और शुक्र निर्बल हो तो वृद्धावस्था में विवाह होता है।

(३) सप्तम, सप्तमेश एवं शुक्र बलहीन हों तथा इन पर राहु एवं शनि का प्रभाव हो तो विवाह ५० वर्ष के आसपास होता है।

(४) उक्त योग में गुलिक का प्रभाव होने पर ६० साल की आयु में विवाह होता है।

(५) सप्तमेश नीच राशि में हो तथा शुक्र अष्टम में हो तो विवाह वृद्धावस्था में होता है। यह योग होने पर कदाचित् जल्दी विवाह हो जाय तो विवाह के वाद शीघ्र ही पत्नी की मृत्यु हो जाती है।

विवाह काल का निर्णय

विवाह होने के पूर्वोक्त योगों के आधार पर यह जाना जा सकता है कि व्यक्ति का विवाह किस आयु में या कितने वर्ष की उम्र में होगा। इसकी और स्पष्ट जानकारी के लिए विवाह कारक दशा तथा गोचरीय परिभ्रमण के साथ इसकी तुलना कर लेनी चाहिए। हमारे विचार में योग, दशा एवं गोचरीय परिभ्रमण इन तीनों से जिस समय विवाह का योग वनता हो, उस समय में निश्चित रूप से विवाह होने का फलादेश या भविष्यवाणी की जा सकती है।

विवाह के योगों का विस्तार पूर्वक विचार पीछे किया जा चुका है। अतः विवाह काल का निर्णय करने के लिए अव हम विवाह कारक दशा एवं गोचरीय परिभ्रमण का विचार कर रहे हैं—

विवाह कारक दशा

विवाह होने के योगों के आधार पर निर्णीत आयु में निम्नलिखित ग्रहों में से किसी की दशा अन्तर्दशा भी आती हो तो निश्चित रूप से विवाह होता है। विवाह कारक दशाएं निम्नलिखित मानी गयी हैं—

(१) सप्तमेश की दशा या अन्तर्दशा में विवाह होता है।

(२) शुक्र से युक्त लग्नेश, द्वितीयेश या एकादशेश की दशा-अन्तर्दशा में विवाह होता है।

(३) शुक्र की दशा-अन्तर्दशा में विवाह होता है।

(४) द्वितीयेश जिस राशि में हो उस राशि के स्वामी की दशा-अन्तर्दशा में विवाह होता है।

(५) शुक्र जिस राशि में स्थित हो, यदि उस राशि का स्वामी त्रिकेश न हो तो उसकी दशा अन्तर्दशा में विवाह होता है।

(६) दशमेश एवं अष्टमेश की दशा-अन्तर्दशा में विवाह होता है।

(७) सप्तमेश के साथ कोई ग्रह हो तो उसकी दशा अन्तर्दशा में विवाह होता है।

(८) सप्तम स्थान में स्थित ग्रह की दशा-अन्तर्दशा में विवाह होता है।

विवाह कारक गोचरीय-परिभ्रमण

विवाह काल का निर्धारण करने में गोचरीय परिभ्रमण का सहयोग सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण माना गया है। विवाह कारक गोचरीय परिभ्रमण के समय विवाह का योग एवं दशा न होने पर भी प्रणय एवं रोमान्स के अनेक अवसर आते हैं। यदि इस समय विवाह का योग भी हो तो निश्चित रूप से विवाह हो जाता है। विवाह कारक दशा एवं गोचरीय परिभ्रमण इन दोनों की परस्पर तुलना में गोचरीय परिभ्रमण को अधिक फलदायक माना गया है।

गोचरक्रम से राशिचक्र में भ्रमणशील ग्रह जब निम्नलिखित स्थितियों में हों तो विवाह होता है—

(१) लग्नेश एवं सप्तमेश इन दोनों ग्रहों को स्पष्ट कर इनके राशि अंश एवं कला आदि का योग कर लेना चाहिए। इस योग तुल्य राशि पर जब गोचरीय क्रम से बृहस्पति आता है, तब व्यक्ति का विवाह होता है।

(२) चन्द्रमा एवं सप्तमेश इन दोनों को स्पष्ट कर इनके राश्यादि का योग कर लेना चाहिए। इस योग तुल्य राशि अंश पर गोचरीय बृहस्पति के आने पर विवाह होता है।

(३) शुक्र से त्रिकोण में या लग्न अथवा सप्तम भाव में गोचरीय बृहस्पति के जाने पर विवाह होता है।

(४) सप्तमेश जिस राशि एवं नवांश में हो उन दोनों में से जो बलवान् हो उससे त्रिकोण में बृहस्पति जाने पर विवाह होता है।

(५) जन्मलग्न, तृतीय, सप्तम एवं एकादश भाव में गोचरीय क्रम से बृहस्पति के जाने पर विवाह योग्य अवस्था में विवाह हो जाता है।

इस प्रकार विवाह काल का निर्णय करते समय सर्वप्रथम विवाह में बाधक योगों का ध्यान रखते हुए यह निश्चय कर लेना चाहिए कि व्यक्ति का विवाह बाल्यावस्था, युवावस्था या वृद्धावस्था में होगा। यह निश्चय मुख्यतया योगों के आधार पर ही करना चाहिए। फिर उस अवस्था में विवाह कारक दशा एवं गोचरीय क्रम से बृहस्पति का संचार देखकर विवाह-काल निर्धारण कर लेना चाहिए।

उदाहरण

विवाह काल के निर्णय के लिए उदाहरण रूप हम निम्नलिखित कुण्डली को ले सकते हैं। इस व्यक्ति का जन्म सम्वत् २००० तथा विवाह संम्वत् २०१६ में १६ वर्ष की आयु में हुआ। इसका जन्म पुनर्वसु नक्षत्र के चतुर्थ चरण में हुआ। जन्म के समय बुध की दशा ३ वर्ष ४ मास २ दिन शेष थी। उस की कुण्डली इस प्रकार है—

इस कुण्डली में लग्न से केन्द्र में शुक्र तथा उस से सप्तम में चन्द्रमा है। शुक्र सप्तमेश के साथ है तथा गुरु से दृष्ट भी है। अतः १२-१६

वर्ष की आयु में विवाह का योग बनता है।

शुक्र मकर राशि में बैठा है, उसका स्वामी शनि है, जो त्रिकेश नहीं
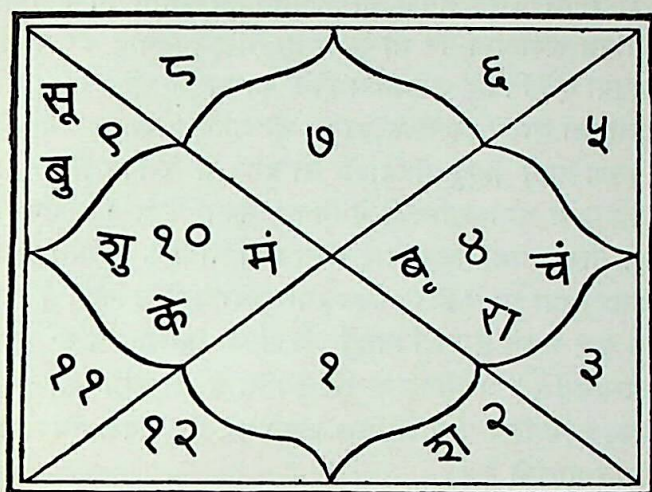
है। अतः इसकी महादशा में विवाह होना चाहिए। यहां मंगल सप्तमेश है तथा मंगली दोष से युक्त है। अतः इसकी अन्तर्दशा विवाह कारक सिद्ध होती है। इस व्यक्ति को १६ वर्ष की आयु में शनि की दशा में मंगल की ही अन्तर्दशा थी और उस समय गोचरीय क्रम से वृषभ में गुरु था, जो शुक्र से त्रिकोण में था। इसलिए इस व्यक्ति का १६ वर्ष की आयु में विवाह हुआ।

विवाह कितने होंगे ?

एक, दो, तीन या अधिक विवाहों का होना व्यक्ति की मनःस्थिति, दाम्पत्य सम्बन्ध एवं पारिवारिक वातावरण को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करता है। उन दो व्यक्तियों की तुलना करने पर जिसमें से एक का मात्र एक ही विवाह हुआ हो तथा दूसरे के अनेक विवाह हुए हों आप उनके दाम्पत्य सम्बन्धों में स्पष्ट अन्तर देख सकते हैं।

अनेक विवाह वाले लोगों को हम दो वर्गों में विभक्त कर सकते हैं। प्रथम वर्ग में वे लोग आते हैं जिसका दूसरा या तीसरा विवाह पत्नी की मृत्यु के कारण या तलाक लेने के कारण होता है। द्वितीय वर्ग के वे लोग हैं, जो जीवित पत्नी होने पर भी दूसरा या तीसरा विवाह कर लेते हैं। अधिकांशतया ऐसे विवाह सन्तान न होने कारण होते हैं। किन्तु लोग अपनी कुलीनता या रसिकता के कारण भी अनेक विवाह कर लेते हैं। यह वर्गीकरण हमने हिन्दू परिवारों को दृष्टि में रखकर किया है। इस्लाम एवं अन्य धर्मावलम्बियों में विवाह संख्या के अन्य कारण होने पर भी एक विवाह तथा बहु विवाह करने वाले लोगों के दाम्पत्य संबंधों में वही अन्तर पाया जाता है, जिसका हमने ऊपर उल्लेख किया है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि विवाहों की संख्या प्रत्यक्ष रूप से हमारे दाम्पत्य सम्बन्धों को प्रभावित करती है। साथ ही साथ वह हमारे पारिवारिक, सामाजिक एवं आर्थिक मूल्यों पर भी प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप में प्रभाव डालती है।

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि दाम्पत्य सम्बन्धों का विचार करते समय, विवाहों की संख्या का ज्ञान कर लेना आवश्यक है। विवाहों की संख्या का निर्धारण फलित ज्योतिष में योगों के आधार पर किया जाता है। यहां हम एक, दो, तीन एवम् अधिक विवाह के योगों को लिख रहे हैं, जिनके आधार पर विवाहों की संख्या का निर्धा-रण किया जा सकता है।

एक विवाह के योग

जिस व्यक्ति की जन्मकुण्डली में निम्नलिखित योगों में से कोई भी एक योग हो उस व्यक्ति का जीवन में केवल एक बार विवाह होता है। एक बार विवाह होने के कुछ प्रमुख योग इस प्रकार हैं—

(१) जिसकी कुण्डली में सप्तम एवं अष्टम स्थान में पाप ग्रह हों तथा बारहवें स्थान में मंगल हो उसका एक बार विवाह होता है।

(२) जिसके जन्मकाल में सप्तमेश अपनी उच्च राशि में हो तथा

शुक्र शुभग्रह के साथ केन्द्र में हो उसके एक पत्नी होती है।

(३) सप्तमेश स्वराशि में पंचमेश के साथ हो तथा उस पर किसी शुभग्रह की दृष्टि हो तो व्यक्ति के एक विवाहिता पत्नी होती हैं।

(४) सप्तम स्थान में शुभग्रह हो तथा गुरु शुक्र के साथ शुभ स्थान में हो तो व्यक्ति का केवल एक बार विवाह होता है।

(५) सप्तम स्थान में सूर्य या मंगल का नवांश होने पर अथवा सप्तम स्थान में बुध सूर्य होने पर एक बार विवाह होता है।

(६) द्वितीय एवं सप्तम भाव के स्वामी अपनी-अपनी नीच राशि में हों तथा शुभ ग्रह केन्द्र या त्रिकोण में हों तो एक विवाह होता है।

(७) सप्तम भाव में मंगल या सूर्य के नवांश में बुध एवं गुरु हों तो व्यक्ति का जीवन में एक बार विवाह होता है।

(८) जन्मकुन्डली में लग्न से सप्तम स्थान में बुध का नवांश होने पर अथवा सप्तम स्थान में गुरु का नवांश होने पर भी केवल एक बार विवाह होता है।

(९) यदि एक बलवान ग्रह सप्तमेश या द्वितीयेश के साथ त्रिक-स्थानों के अलावा अन्यत्र बैठा हो तो व्यक्ति के केवल एक विवाहिता पत्नी होती है।

दो विवाह होने के योग

जिस व्यक्ति की जन्मकुण्डली में—चाहे वह स्त्री हो या पुरुष निम्नलिखित योगों में से कोई एक योग पड़ा हो, उसके जीवन में दो विवाह होते हैं।

(१) सप्तमेश नीच राशि में हो तथा सप्तम स्थान में पाप ग्रह हो तो व्यक्ति का जीवन में दो बार विवाह होता है।

(२) सप्तमेश या द्वितीयेश निर्बल हों तथा उन पर पाप प्रभाव हो तो दो बार विवाह होता है।

द्विभार्या योग

इस योग में उत्पन्न व्यक्ति के दो पत्नी होती हैं। यह योग दो प्रकार

का माना गया है—१. द्विभार्या योग तथा २. जीवित द्विभार्या योग। प्रथम योग में उत्पन्न व्यक्ति पत्नी की मृत्यु के बाद दूसरा विवाह कर लेता है। द्वितीय योग में उत्पन्न व्यक्ति एक पत्नी के जीवित रहते हुए भी दूसरा विवाह कर लेता है। इस प्रकार के कुछ अनुभूत योग नीचे लिखे जा रहे हैं।

(१) लग्नेश लग्न में, द्वितीयेश सप्तम में तथा सप्तमेश द्वितीय भाव में हो तो इस योग में उत्पन्न व्यक्ति के दो विवाहित पत्नियाँ होती हैं।

(२) अष्टमेश लग्न या सप्तम में हो तो इस योग में उत्पन्न पुरुष के दो पत्नी होती हैं।

(३) सप्तमेश पाप ग्रह के साथ तथा शुक्र शुभग्रह के साथ हो तो व्यक्ति के दो परिणीता पत्नियां होती हैं।

(४) सप्तमेश पाप ग्रहों के साथ चरराशि में हो तथा उस पर पाप ग्रहों की दृष्टि हो तो इस योग में उत्पन्न पुरुष के दो स्त्रियां होती हैं।

(५) पापग्रहों के साथ शुक्र चरराशि में हो तथा सप्तम स्थान के नवांश पर पाप प्रभाव हो तो व्यक्ति के दो पत्नियां होती हैं।

(६) सूर्य एवं बुध के साथ शुक्र स्थिर राशि में हो तथा सप्तमेश पाप ग्रह हो तो इस योग में जन्म लेने वाले पुरुष के दो पत्नियां होती हैं।

(७) सप्तमेश शनि के साथ हो अथवा उसका राहु के साथ सम्बन्ध हो तो इस योग के प्रभाववश व्यक्ति के दो पत्नियां होती हैं।

दो जीवित पत्नियां होने के योग

(१) द्वितीयेश एवं सप्तमेश ये दोनों ग्रह शुभग्रहों से युत-दृष्ट हों तो इस योग में पैदा होने वाले मनुष्य के दो जीवित पत्नियां होती हैं।

(२) सप्तम स्थान में मंगल, शुक्र या अपने मित्र की राशि में चन्द्रमा तथा अष्टम स्थान में लग्नेश होने पर इस योग के प्रभाववश व्यक्ति के दो जीवित पत्नियां होती हैं।

बहुविवाह के योग

बहु विवाह के योग का प्रभाव यह माना गया है कि इस योग में

उत्पन्न व्यक्ति के ३ या इससे भी अधिक स्त्रियों से विवाह होता है। इस प्रसंग में कुछ योग हमारे अनुभव में आये हैं, जिन्हें पाठकों की जानकारी के लिए लिख रहे हैं।

(१) लग्न, द्वितीय या सप्तम स्थान में पापग्रह हों तथा सप्तमेश नीच राशि में हो तो व्यक्ति की ३ शादियां होती हैं।

(२) द्वितीय या सप्तम स्थान में पापग्रहों का वाहुल्य हो तथा उसका स्वामी भी पापग्रह के साथ हो तो पत्नी की मृत्यु या तलाक के कारण मनुष्य के ३ विवाह होते हैं।

(३) राहु एवं मंगल से युत अथवा दृष्ट शुक्र द्विस्वभाव राशि में हो तो इस योग में उत्पन्न पुरुष के ३ विवाह होते हैं।

(४) द्विस्वभाव राशि में मंगल एवं राहु के साथ शुक्र हो तथा उस पर पापग्रहों की दृष्टि हो तो मनुष्य के ४ विवाहिता पत्नियां होती हैं।

(५) पंचमेश के साथ सप्तमेश लाभ स्थान में हो तथा उस पर तृतीयेश की दृष्टि हो तो इस योग में उत्पन्न व्यक्ति के ५ पत्नियां होती हैं।

(६) उच्चराशि, मित्रराशि या स्वराशि में सप्तमेश केन्द्र या त्रिकोण स्थान में बैठा हो तथा द्वितीयेश और दशमेश साथ हो तो व्यक्ति के अनेक विवाह होते हैं।

(७) बलवान् चन्द्रमा एवं शुक्र साथ-साथ हो तथा इनसे ७ वें स्थान में सप्तमेश हो; किन्तु वह त्रिकस्थान में न हो तो पुरुष के अनेक पत्नियां होती हैं।

(८) धनेश एवं व्ययेश दोनों तृतीय स्थान में हों तथा उन पर गुरु या नवमेश की दृष्टि हो तो पुरुष के अनेक विवाह होते हैं।

(९) सप्तमेश एवं लाभेश त्रिकोण स्थान में हों तथा दोनों बलवान् हों तो व्यक्ति के अनेक विवाह होते हैं।

(१०) सप्तमेश एवं लाभेश साथ-साथ हों या एक दूसरे को देखते हों तथा सप्तम स्थान में शुक्र हो तो मनुष्य के अनेक विवाह होते हैं।

नवम् अध्याय

दाम्पत्य सम्बन्ध विचार

दाम्पत्य प्रेम, दाम्पत्यसुख के योग, पतिव्रता या पतिपरायणा योग, पारिवारिक सुख का योग, सन्तति सुख का योग, गृहलक्ष्मी योग, विधुर एवं विधवा योग, पतिपत्नी के पृथक् या दूर रहने के योग, वैचारिक मत-भेद, क्या तलाक होगा ? दाम्पत्य कलह के कारण हत्या या आत्म हत्या के योग, उपसंहार।

पति-पत्नी के आपसी सम्बन्ध दाम्पत्य सम्बन्ध कहे जाते हैं। गृहस्थी एवं परिवार का समस्त स्वरूप इन सम्बन्धों पर आश्रित होता है। यदि दाम्पत्य सम्बन्ध मधुर हों तो परिवार सुखमय रहता है। इन सम्बन्धों के बिगड़ने पर परिवार नरक तुल्य बन सकता है। व्यक्ति की पारिवारिक, सामाजिक आर्थिक एवं धार्मिक स्थिति को बनाने एवं बिगाड़ने में दाम्पत्य सम्बन्ध निर्णायक भूमिका अदा करते हैं।

विवाह के बाद कन्या का सम्बन्ध पिता के घर से टूट कर पति के परिवार से जुड़ जाता है। जिस घर में कन्या का जन्म हुआ था जहां उसका लालन-पालन हुआ जहां वह खेलती-कूदती रही, जहां उसके माता-पिता, भाई-बहन, सगे सम्बन्धी एवं सहेलियां थीं—विवाह के समय उन सबको छोड़कर वह अपने पति के घर चली जाती है, जहां उसके लिए सभी लोग अपरिचित एवं नये होते हैं। हिन्दू धर्मशास्त्र के अनुसार कन्यादान के तुरन्त बाद कन्या का गोत्र बदल जाता है। वह पिता के

गोत्र की न रह कर पति के गोत्र में प्रवेश कर जाती है। इस प्रकार हम देखते हैं कि एक लड़की को विवाह के साथ कितना बड़ा त्याग करना पड़ता है? इसके विपरीत एक लड़के को विवाह के लिए किसी प्रकार का त्याग नहीं करना पड़ता। अपितु उसका ससुराल से एक नया रिश्ता जुड़ जाने के कारण उसके सम्बन्धों में वृद्धि होती है। स्त्री का यही त्याग उसे अपने पति की हृदयवल्लभा एवं परिवार की साम्राज्ञी बनाता है।

यदि गृहस्थी या परिवार को छोटा सा राज्य मान लिया जाय तो उसमें पति का स्थान राजा का तथा पत्नी का स्थान मन्त्री का हो सकता है। मन्त्री का अर्थ मन्त्रणा देने वाला या सलाहकार होता है। सामान्यतया राज्य के समस्त काम काज मन्त्री की सलाह से चलते हैं; राजा उनमें कोई हस्तक्षेप नहीं करता। किन्तु राजा मन्त्री से उत्तरदायित्व की अपेक्षा रखता है। यदि मन्त्री उत्तरदायित्व न निभा सके, वह गलत सलाह दे या ऐसा कोई कार्य करे जो राज्य के हितों के विरुद्ध हो, तो राजा अपने अधिकार एवं प्रभाव का उपयोग कर उनमें यथोचित संशोधन कर सकता है। तात्पर्य यह है कि मन्त्री के हाथ में राज्य के समस्त स्वत्वाधिकार होते हुए भी वह राजा की अपेक्षा रखता है तथा उसके महत्त्व को नकार नहीं सकता। यद्यपि कुछ मन्त्री अपनी बुद्धिमत्ता, कार्यकुशलता, उपलब्धि एवं समर्पित सेवावृत्ति के कारण राजा को अपने वश में कर लेते हैं। किन्तु वे भी राजा के महत्त्व एवं उसकी प्रमुखता को चुनौती नहीं दे सकते। ठीक यही स्थिति गृहस्थी के राज्य में पति-पत्नी की होती है। पत्नी घर के समस्त काम काजों के संचालन में मन्त्री की भूमिका निभाती है तथा पुरुष राजा की भूमिका में होता है। यदि पति एवं पत्नी में से किसी की उक्त भूमिका को चुनौती दी जाय या उसके महत्त्व को कम किया जाथ तो गृहस्थी के राज्य में अराजकता एवं अव्यवस्था का बोलबाला हो सकता है तथा वह स्थिति गृहस्थ जीवन के लिए भयावह हो सकती है।

जिस प्रकार राजा एवं मन्त्री की विचार धारा मान्यता, आस्था एवं मूल्यों में तालमेल बना रहना आवश्यक माना गया है। इसी ताल-

मेल से राज्य में खुशहाली आती है। ठीक उसी प्रकार पति-पत्नी की विचारधारा, मान्यता, आस्था एवं जीवन मूल्यों में ताल मेल बने रहने पर ही पारिवारिक जीवन सुखमय रह सकता है।

दाम्पत्य प्रेम

सुमधुर दाम्पत्य सम्बन्धों के लिए तथा सुखमय दाम्पत्य जीवन के लिए पति-पत्नी में प्रेम भावना की अनिवार्यता से नकार नहीं किया जा सकता। इस दाम्पत्य-प्रेम का विचार ज्योतिष शास्त्र में सप्तम भाव तथा शुक्र से किया जाता है। सप्तम भाव पति या पत्नी का प्रतिनिधि माना गया है, तथा शुक्र प्रेम या रति का प्रतिनिधि ग्रह है। इसलिए जिन दम्पतियों की कुण्डली में सप्तमभाव, सप्तमेश एवं शुक्र पर शुभ प्रभाव हो उनमें अटूट प्रेम पाया जाता है। इस विषय में कुछ योग हमारे अनुभव में आये हैं। जो निम्न लिखित है—

(१) जिन की कुण्डली में सप्तमेश केन्द्र, त्रिकोण या लाभ स्थान में हो तथा उस पर शुक्र की दृष्टि हो उन दम्पतियों में परस्पर अत्यन्त स्नेह रहता है।

(२) सप्तमेश एवं शुक्र शुभ ग्रहों के साथ त्रिक स्थानों से भिन्न स्थान में हों तथा उन पर शुभ ग्रहों की दृष्टि हो तो इस योग के प्रभाववश पति-पत्नी में अटूट प्रेम रहता है।

(३) सप्तमेश एवं शुक्र दोनों उच्चराशि या स्वराशि में हो तथा इन दोनों पर पापग्रहों का प्रभाव न हो तो दाम्पत्य सम्बन्ध प्रेममय रहते हैं।

(४) सप्तमेश बलवान् होकर लग्न या सप्तम स्थान में हो तथा चतुर्थेश एवं शुक्र साथ-साथ हों तो पति-पत्नी में अत्यन्त प्रेम रहता है।

(५) सप्तमेश एवं शुक्र एक दूसरे की राशि में केन्द्र या त्रिकोण में बैठे हों तथा इन पर द्वितीयेश या चतुर्थेश की दृष्टि हो तो दाम्पत्य जीवन प्रेममय रहता है।

(६) लग्न या चन्द्रमा से सप्तम स्थान अपने स्वामी एवं शुभग्रह से दृष्ट या युक्त हो तो पति-पत्नी के सम्बन्ध प्रेममय रहते हैं।

(७) लग्न में बृहस्पति तथा सप्तम स्थान में शुक्र होने पर पति-पत्नी में मित्रता एवम् अटूट प्रेम रहता है।

दाम्पत्य सुख के योग

जो पुरुष अल्पआयु, रोगी, नपुंसक, चरित्रहीन, व्यभिचारी, दरिद्री, संन्यासी न हो तथा जो स्त्री रोगिणी, व्यभिचारिणी, कुटिला, वन्ध्या एवं भाग्यहीन न हो—ऐसे स्त्री-पुरुषों का दाम्पत्यजीवन सुखमय रह सकता है। पुरुष एवं स्त्री का स्वास्थ्य-स्वभाव, भाग्य एवम् आर्थिक स्थिति अच्छी होनी चाहिए, अन्यथा दाम्पत्य सुख में हानि हो सकती है। इन समस्त बातों का विचार अध्याय २-५ में किया जा चुका है। पिछले अध्याय में प्रतिपादित वर एवं कन्या के गुण एवं दोषों का भली-भांति विचार कर दाम्पत्य प्रेम के योगों पर ध्यान देना चाहिए। यदि वर एवं वधू की कुण्डलियां उक्त योगों की कसौटी पर खरी उतरें तथा उनकी कुण्डलियों में दाम्पत्यप्रेम का योग हो तो निःसन्देह रूप से उनका दाम्पत्य जीवन सुखी रहता है।

दाम्पत्य सुख का विचार करने की इस शास्त्रीय रीति के अलावा ज्योतिष शास्त्र में दाम्पत्य-सुख के कुछ योगों का उल्लेख भी मिलता है, इसमें से कुछ अनुभूत योग इस प्रकार हैं—

(१) सप्तमेश या शुक्र शुभग्रहों से दृष्ट या युत हो अथवा उनमें से कोई एक शुभग्रहों के बीच में हो तो दाम्पत्य जीवन सुखमय रहता है।

(२) लग्न एवं सप्तम स्थान में शुभ ग्रह हों तथा उन पर पाप ग्रहों का प्रभाव न हो तो दाम्पत्य सुख अच्छा मिलता है।

(३) शुक्र, अपनी उच्चराशि, स्वराशि या गोपुर आदि अंशों में हो तो दाम्पत्य सुख में बाधा नहीं आती।

(४) सप्तमेश बलवान् हो तथा सप्तमभाव पर गुरु की दृष्टि हो तो दाम्पत्य सम्बन्ध मृदु रहते हैं।

(५) कारकांश-लग्न से सप्तम में गुरु और चन्द्रमा हो तो दाम्पत्य सुख की वृद्धि होती है।

(६) कारकांश लग्न में बुध तथा सप्तम में शुक्र हो और इन दोनों में किसी एक पर गुरु की दृष्टि हो तो दाम्पत्य सुख में कमी नहीं आती।

(७) कारकांश एवं स्वांश दोनों से सप्तम स्थान पर शुभ ग्रहों का प्रभाव हो तो दाम्पत्य जीवन सुखमय रहता है।

पतिव्रता या पतिपरायणा योग

पति की सेवा में तत्पर एवं उसके मनोनुकूल उपचार तथा व्यवहार करने वाली स्त्री पतिव्रता कहलाती है। यह योग स्त्री एवं पुरुष दोनों की कुण्डली से देखा जा सकता है। पुरुष की कुण्डली में पतिव्रता पत्नी मिलने का योग होता है तथा स्त्री की कुण्डली में पतिपरायणा योग मिलता है।

पुरुष की कुण्डली में निम्न लिखित योगों में से कोई एक योग हो तो उसकी पत्नी पतिव्रता होती है—

(१) सप्तमेश चतुर्थ या दशम स्थान में हो तो व्यक्ति की पत्नी पतिव्रता होती है।

(२) सप्तमेश वलवान् होकर गुरु के साथ हो अथवा उससे दृष्ट हो तो मनुष्य की स्त्री पतिव्रता होती है।

(३) सूर्य सप्तमेश हो तथा उस पर शुभ-ग्रह की दृष्टि हो तो इस योग में उत्पन्न व्यक्ति की पत्नी पतिव्रता होती है।

(४) सप्तमेश शुक्र हो तथा उस पर शुभ ग्रहों की दृष्टि हो तो व्यक्ति को पतिव्रता तथा सुन्दर स्त्री मिलती है।

(५) सप्तम स्थान में गुरु हो तथा सप्तमेश शुभ स्थान में हो तो व्यक्ति की पत्नी पतिव्रता एवं धर्म परायणा होती है।

(६) सप्तमेश केन्द्र स्थानों में शुभ ग्रहों के नवांश में हो तथा वह शुभ ग्रहों से दृष्ट या युत हो तो इस योग में उत्पन्न व्यक्ति की पत्नी

पतिव्रता और धर्मपरायणा होती है।

जिस स्त्री की कुण्डली में निम्नलिखित योगों में से कोई एक योग होता है, तो वह अपने पति से प्रेम करने वाली तथा उसकी सेवा में तत्पर रहती है।

(१) सप्तम भाव में मंगल शुक्र के नवांश में हो तथा उसे शुभ ग्रह देखते हों तो इस योग में उत्पन्न स्त्री पतिपरायणा होती है।

(२) सप्तम स्थान में गुरु एवं शुक्र दोनों हों तथा शुक्र चतुर्थ स्थान में हो तो इस योग में उत्पन्न स्त्री पतिपरायणा होती है।

(३) लग्नेश एवं शुक्र साथ-साथ हों तथा इन पर गुरु की दृष्टि हो तो इस योग में उत्पन्न कन्या पति की आज्ञाकारिणी होती है।

(४) सप्तमेश बलवान् होकर गुरु के साथ हो तथा चतुर्थेश दो शुभ ग्रहों के मध्य में हो तो इस योग में उत्पन्न स्त्री धर्मशील एवं पतिव्रता होती है।

(५) सप्तमेश गुरु के साथ हो या सप्तम स्थान में गुरु हो तथा इस पर बुध या शुक्र की दृष्टि हो तो इस योग में उत्पन्न स्त्री पतिपरायणा होती है।

गृहलक्ष्मी योग

जिस स्त्री की कुण्डली में लग्नेश ६ वें, नवमेश ७ वें तथा सप्तमेश लग्न में हो तो वह स्त्री गृहलक्ष्मी होती है। उसका न केवल अपने सुसराल में अपितु अपनी जाति एवं समाज में भी अच्छा प्रभाव रहता है।

इसी प्रकार जिस स्त्री के जन्मकाल में लग्नेश चतुर्थेश एवं पंचमेश केन्द्र या त्रिकोण में बलवान् होकर परस्पर सम्बन्ध रखते हों; वह स्त्री अपने घर की साम्राज्ञी होती है।

इन दोनों योगों में उत्पन्न स्त्री का अपने परिवार एवं समाज में आदर होता है। उसके भाग्य के प्रभाव से परिवार की आर्थिक स्थिति सुदृढ़ रहती है। तथा परिवार की बागडोर उसी के हाथ में रहती है।

सन्तति सुख विचार

सुखमय दाम्पत्य सम्बन्धों का परिणाम स्वस्थ एवं सुयोग्य सन्तान होना है। योग्य एवं स्वस्थ सन्तान के लिए ही विवाह किया जाता है। अतः इस विषय का विचार किये बिना दाम्पत्य सम्बन्धों का विचार अपूर्ण माना जायेगा।

ज्योतिष शास्त्र के अनुसार पंचमेश एवं गुरु ये दोनों सन्तति भाव के प्रतिनिधि ग्रह माने गये हैं, तथा पंचम एवं नवम भाव सन्तान के प्रतिनिधि भाव हैं। अतः चारों पर शुभ प्रभाव होने पर सन्ततिसुख योग बनता है और इन पर पाप प्रभाव होने से सन्ततिबाधा योग बनता है।

फलित ज्योतिष के ग्रन्थों में सन्तति सुख तथा सन्तति बाधा के योगों का बड़े विस्तार से विवेचन किया गया है। इस विषय में आपको सैकड़ों योग जातक ग्रन्थों में मिल सकते हैं। किन्तु यहां हम पाठकों की जानकारी के लिए कतिपय अनुभूत योग लिख रहे हैं, जो फलादेश की कसौटी पर खरे उतरते हैं।

सन्ततिसुख के योग

(१) यदि पंचमेश बलवान् होकर लग्न, पंचम या सप्तम स्थान में बैठा हो तथा उसपर पापग्रहों का प्रभाव न हो तो व्यक्ति को निश्चित रूप से सन्तान का सुख मिलता है।

(२) यदि गुरु या शुक्र पंचम भाव में बैठे हों तथा पंचमेश शुभ ग्रह के साथ हो तो मनुष्य को सन्तान का सुख मिलता है।

(३) यदि सूर्य, मंगल या गुरु पंचमेश हो तथा वह बलवान् होकर विषम राशि के नवांश में हो तो पुत्र का शीघ्र जन्म होता है।

(४) यदि पंचमेश अपनी उच्च राशि में हो तथा उस पर शुभ ग्रहों की दृष्टि हो तो विवाह के शीघ्र बाद पुत्र का जन्म होता है।

(५) लग्नेश पंचम भाव में हो, गुरु तथा पंचमेश बलवान् हो तो विवाह के बाद यथाशीघ्र पुत्र उत्पन्न होता है।

(६) पंचमेश गुरु बलवान् हो तथा उसको लग्नेश देखता हो तो

यथाशीघ्र आज्ञाकारी पुत्र उत्पन्न होता है।

(७) धनेश पंचम स्थान में हो तथा उस पर गुरु या नवमेश की दृष्टि हो तो भाग्यवान् पुत्र का जन्म होता है।

(८) लग्नेश एवं पंचमेश दोनों नवम भाव में हों तथा इन पर गुरु की दृष्टि हो तो धनवान् एवं धर्मात्मा पुत्र उत्पन्न होता है।

(९) नवमेश एवं लग्नेश दोनों सप्तम भाव में हों तथा पंचमेश लग्न में हो तो विद्वान् एवं भाग्यवान् पुत्र होता है।

(१०) पंचमेश एवं लग्नेश एक दूसरे को देखते हों तथा गुरु त्रिकोण में हो तो स्वस्थ एवं आज्ञाकारी पुत्र का जन्म होता है।

(११) पंचम भाव में सम राशि एवं सम राशि का नवांश हो और उस पर चन्द्रमा या शुक्र की दृष्टि हो तो कन्या का जन्म होता है।

(१२) पंचमेश द्वितीय या अष्टम भाव में हो तथा पंचम भाव पर स्त्री ग्रहों की दृष्टि हो तो कन्याओं का जन्म होता है।

(१३) पंचम स्थान में स्थित बुध पर चन्द्रमा या शुक्र की दृष्टि हो तो प्रथम सन्तान कन्या होती है तथा सन्तानों में कन्या अधिक होती है।

(१४) कर्क राशि का चन्द्रमा पंचम स्थान में हो तो कम सन्तान होती है।

(१५) पंचम भाव में शुक्र की राशि या नवांश हो और उस पर गुरु या शुक्र की दृष्टि हो तो अधिक सन्तान होती है।

(१६) लग्नेश लग्न, द्वितीय या तृतीय भाव में हो तो पहले पुत्र का जन्म होता है।

(१७) चन्द्र, मंगल और शुक्र ये तीनों द्विस्वभाव राशि में हों तो पहले पुत्र का जन्म होता है।

(१८) लग्न स्थान में पापग्रह तथा पांचवें स्थान में चन्द्रमा या शुक्र हो तो पहले कन्या होती है।

(१९) वृष या तुला का चन्द्रमा पंचम या नवम स्थान में हो तो

एक पुत्र होता है।

(२०) लग्न में राहु, पंचम में गुरु तथा नवम स्थान में शनि हो तो व्यक्ति के एक मात्र पुत्र होता है।

सन्तति बाधा के योग

(१) तृतीयेश लग्न, तृतीय, पंचम या द्वादश स्थान में हो तो सन्तान नहीं होती और होती है तो मर जाती है।

(२) पंचमेश अस्त हो या पाप ग्रहों से दृष्ट युत हो तथा केन्द्र में पापग्रहों के साथ चन्द्रमा हो तो सन्तान में बाधा होती है।

(३) बुध एवं लग्नेश दोनों ४, ७ या १० वें स्थान में हो तो सन्तान नहीं होती।

(४) पंचम, एकादश एवं द्वादश स्थान में पाप ग्रह हों तो सन्तान नहीं होती।

(५) लग्न में चन्द्रमा एवं गुरु हो तथा सप्तम में शनि एवं मंगल हो तो सन्तान नहीं होती।

(६) चतुर्थ स्थान में पापग्रह, पंचम में गुरु तथा एकादश में राहु या केतु हो तो सन्तान नहीं होती।

(७) पंचमेश क्रूर ग्रह के नवांश में हो तथा नवम एवं एकादश स्थान में पापग्रह हों तो पुत्र उत्पन्न होकर मर जाता है।

(८) पंचम स्थान में बुध हो, लग्न तथा चतुर्थ में पापग्रह हो तो पुत्र मर जाता है।

(९) लग्न में सूर्य और पांचवें मंगल हो तो पुत्र उत्पन्न नहीं होता।

(१०) पंचमेश लग्न या सप्तम स्थान में बलवान् षष्ठेश के साथ हो तो पुत्र मर जाता है।

(११) पंचमेश त्रिक स्थान में हो तथा लग्नेश पापग्रह के साथ हो तो पुत्र की मृत्यु हो जाती है।

(१२) लग्नेश मंगल की राशि में हो तथा पंचमेश षष्ठ स्थान में हो तो उत्पन्न होने वाली सन्तान मर जाती है।

दाम्पत्यसुख में हानि

दम्पति में से किसी का अस्वस्थ, नपुंसक, चरित्रहीन, भाग्यहीन या संन्यासी होना दाम्पत्य सुख में हानि का कारण वन सकता है। अतः विवाह से पूर्व इन योगों का विचार पिछले अध्यायों में वतलायी गयी रीति से कर लेना चाहिए !

दाम्पत्य सुख में कमी का प्रमुख कारण होता है पति-पत्नी की प्रकृति, अभिरुचि एवं जीवन मूल्यों में असमानता का होना। इसका विचार मेलापक में वतलायी गयी रीति से किया जाता है। इन कारणों के अलावा विधुर या विधवा होना, पति-पत्नी का पृथक् या दूर रहना एवं तलाक लेना आदि कुछ अन्य कारण भी दाम्पत्य सुख में वाधक माने जा सकते हैं। इस अध्याय में हम इन्हीं अवशिष्ट कारणों का विचार करेंगे।

विधुर योग

पत्नी के बिना दाम्पत्य सुख की कल्पना भी नहीं की जा सकती। अतः उसकी मृत्यु होने पर विधुर अवस्था में इस सुख का सर्वथा अभाव हो जाता है। इस अवस्था का ज्योतिष शास्त्र में बड़ी गम्भीरता से विचार किया गया है। क्योंकि हर प्रकार से उपयुक्त एवं योग्य पति-पत्नी, जिनमें अत्यधिक प्रेमप्रीति रहा हो वे काल क्रम से विधुर या विधवा होने पर अथाह दुःख के सागर में पड़ जाते हैं। इसलिए इस योग का सावधानी पूर्वक विचार कर लेना चाहिए।

जिस व्यक्ति की जन्म कुण्डली में निम्नलिखित योगों में से कोई एक योग हो उसकी पत्नी की मृत्यु हो सकती है—

(१) सप्तमेश नीच राशि या पापग्रह की राशि में हो तथा यह पाप ग्रह से दृष्टयुत हो तो व्यक्ति की पत्नी मर जाती है।

(२) सप्तमेश, द्वितीयेश या शुक्र पापग्रह के साथ हो और उस पर पापग्रह की दृष्टि हो तो पत्नी की मृत्यु होती है।

(३) सप्तमेश एवं द्वितीयेश राहु या केतु के साथ हों तथा इनमें से किसी एक पर शनि की दृष्टि हो तो पत्नी की मृत्यु हो जाती है।

(४) सप्तमेश शत्रु राशि या नीच राशि में हों और उस पर पाप ग्रह की दृष्टि हो अथवा सप्तम स्थान पाप ग्रहों से युत दृष्ट हो तो पत्नी की मृत्यु हो जाती है।

(५) सप्तमेश निर्बल होकर ६, ८ या १२ वें स्थान में हो तथा शुक्र नीच राशि में हो तो मनुष्य की पत्नी की शीघ्र मृत्यु होती है।

(६) सप्तमेश अष्टम में तथा व्ययेश सप्तम स्थान में हो तो पत्नी की शीघ्र मृत्यु हो जाती है।

(७) द्वितीय स्थान में राहु तथा सप्तम स्थान में मंगल होने पर विवाह के बाद शीघ्र ही पत्नी की मृत्यु हो जाती है।

(८) शुक्र अष्टम स्थान में तथा अष्टमेश सप्तम स्थान में होने पर पत्नी की शीघ्र मृत्यु होती है।

(९) लग्नेश एवं सप्तमेश दोनों अष्टम स्थान में हों तो प्रौढ़ावस्था में पत्नी की मृत्यु होती है।

विधवा योग

स्त्री के जीवन में वैधव्य से बढ़कर कोई दुःख हो नहीं सकता। विधवा योग दाम्पत्य सुख को हमेशा हमेशा के लिए समाप्त कर सकता है। विधवा होने के योगों का विचार अध्याय ५ में किया जा चुका है। अतः यहां हम उनकी पुनरावृत्ति नहीं करना चाहते।

पति-पत्नी के पृथक् या दूर रहने के योग

पतिपत्नी का पृथक् पृथक् या दूर रहना भी दाम्पत्य सुख को नष्ट करता है। इसके अनेक कारण हो सकते हैं। यहां हम दम्पति के पृथक् या दूर रहने के योगों का संक्षेप में विचार कर रहे हैं।

ज्योतिष शास्त्र में पृथक्त्व का प्रतिनिधि व्यय भाव माना गया है। राहु, केतु एवं व्ययेश पृथक्त्व के प्रतिनिधि ग्रह होते हैं। यदि इनका सप्तम भाव, सप्तमेश या शुक्र पर प्रभाव हो तो पतिपत्नी के पृथक् या

दूर रहने का योग बनता है। हमारे विचार में निम्न लिखित योगों में जन्म लेने वाले दम्पति पृथक् या दूर रहते हैं—

(१) सप्तमेश १२ वें स्थान में तथा लग्न में राहु हो तो पतिपत्नी पृथक् रहते हैं।

(२) सप्तम स्थान में व्ययेश एवं राहु दोनों हों तो पतिपत्नी पृथक् रहते हैं।

(३) सप्तमेश एवं व्ययेश दोनों दशम स्थान में चर राशि में हों तो पतिपत्नी भिन्न-भिन्न स्थानों पर दूर रहते हैं।

(४) सप्तमेश व्ययस्थान में तथा व्ययेश सप्तम स्थान में हो तथा इनमें से किसी एक के साथ राहु हो तो पतिपत्नी अलग अलग रहते हैं।

(५) व्ययेश एवं सप्तमेश दोनों पंचम स्थान में हों तथा सप्तम स्थान पर राहु या केतु की दृष्टि हो तो व्यक्ति अपनी पत्नी एवं पुत्रों से अलग रहता है।

(६) सप्तमेश १२वें हो, शुक्र ७ वें हो तथा इन दोनों पर पाप ग्रह की दृष्टि हो तो पत्नी स्वयम् अलग हो जाती है।

क्या तलाक होगी ?

विवाह के बाद जब पतिपत्नी आपसी मतभेद या असन्तोष के कारण हमेशा हमेशा के लिए एक-दूसरे का साथ छोड़ देते हैं, तब इस वैधानिक स्थिति को तलाक देना कहा जाता है। अतः तलाक का निर्णय करने के लिए हमें देखना चाहिए कि क्या पति-पत्नी की कुण्डली में स्थायी रूप से अलग हो जाने का योग है। ज्योतिष के प्राचीन ग्रन्थों में पत्नी को छोड़ने या पति छोड़ने के योगों की चर्चा यत्र तत्र मिलती है। इन योगों का विचार आज तलाक के परिप्रेक्ष्य में किया जा सकता है।

हमारे विचार में तलाक भी पृथक्ता का ही वैध रूप है। अतः पति-पत्नी के पृथक् या दूर रहने के योगों तथा तलाक के योगों में काफी अंशों में समानता पायी जाती है। हम पहले कह चुके हैं कि व्ययभाव, व्ययेश, राहु एवं केतु पृथक्ता के प्रतिनिधि भाव तथा ग्रह हैं। इनका

सप्तम भाव, सप्तमेश या शुक्र पर प्रभाव हो तो पतिपत्नी के पृथक् या दूर रहने का योग बनता है। यदि इसी योग में शनि या मंगल का भी प्रभाव सम्मलित कर लिया जाय तो तलाक का योग बन सकता है।

फलित ज्योतिष के प्राचीन ग्रन्थों में पति या पत्नी के परित्याग के योगों में से प्रमुख योग निम्नलिखित हैं—

(१) जिस स्त्री की जन्मकुण्डली में लग्न में मंगल या शनि की राशि में शुक्र हो तथा सप्तम स्थान पर पाप प्रभाव हो तो स्त्री अपने विवाहित पति को छोड़कर किसी अन्य के साथ विवाह कर लेती है।

(२) जिसकी कुण्डली में सप्तम स्थान में शुभ एवं पाप दोनों प्रकार के ग्रह हों तथा सप्तमेश या शुक्र निर्बल हो तो स्त्री एक पति को छोड़कर किसी दूसरे के साथ विवाह कर लेती है।

(३) यदि चन्द्रमा एवं शुक्र पाप ग्रहों के साथ सप्तम स्थान में हों तो पतिपत्नी गुप्त रूप से वैवाहिक सम्बन्ध तोड़ देते हैं।

(४) सप्तम स्थान में सूर्य हो तथा सप्तमेश निर्बल हो तो उस स्त्री को उसका पति छोड़ देता है।

(५) निर्बल पापग्रह सप्तम में बैठे हों तो इस योग में उत्पन्न स्त्री को उसका पति छोड़ देता है।

(६) लग्न में राहु एवं शनि हो तो व्यक्ति लोकापवाद से अपनी पत्नी का परित्याग कर देता है।

(७) सप्तम स्थान में स्थित सूर्य पर उसके शत्रु की दृष्टि हो तो इस योग में उत्पन्न स्त्री को उसका पति छोड़ देता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि तलाक के योगों में सप्तम भाव पर पाप ग्रहों का प्रभाव होना नितान्त आवश्यक होता है। कभी-कभी तलाक पति-पत्नी दोनों आपसी इच्छा से बगैर किसी प्रपञ्च के भी हो जाती है। हिन्दुओं को छोड़कर अन्य धर्मावलम्बियों में तलाक लेना या देना उतना कठिन नहीं होता। इस्लाम धर्म ने पुरुष को तलाक देने में कोई खास रुकावट नहीं डाली। विकसित देशों में आज तलाक एक सामान्य या आम बात बन गयी है। इन सब स्थितियों में सप्तम स्थान

पर मात्र पाप ग्रहों का प्रभाव होने पर भी तलाक होने की भविष्यवाणी की जा सकती है।

किन्तु हिन्दुओं में अभी तलाक लेना या देना उतना आसान नहीं है, जितना अन्य लोगों में है। अतः हिन्दु दम्पति की कुण्डली में तलाक का विचार करते समय सप्तम भाव एवं सप्तमेश पर व्ययेश एवं पाप ग्रहों के प्रभाव को देख लेना चाहिए। हमारे अनुभव में कुछ इस प्रकार के योग आये हैं, जिनमें प्रायः तलाक हो जाती है। ये योग इस प्रकार हैं—

(१) सप्तमेश एवं व्ययेश एक-दूसरे के स्थान में हो तथा सप्तम भाव में राहु, मंगल या शनि हो तो दम्पति तलाक ले लेते हैं।

(२) सप्तमेश व्यय स्थान में हो, सप्तम भाव में पाप ग्रह हों तथा इन पर षष्ठेश की दृष्टि हो तो दैनिक कलह के कारण पति-पत्नी में तलाक हो जाती है।

(३) सप्तमेश एवं व्ययेश दोनों त्रिक स्थानों में हों तथा सप्तम में पाप ग्रह हों तो पति-पत्नी तलाक दे देते हैं।

दाम्पत्य कलह के कारण हत्या एवम् आत्महत्या के योग

अनेकों बार दाम्पत्य कलह हत्या या आत्महत्या का कारण बन जाता है। एक सर्वेक्षण के अनुसार १८ से ३० वर्ष की आयु में आत्म-हत्या करने वाली स्त्रियों में से ८० प्रतिशत महिलाएँ रोज रोज के आपसी कलह से तंग आकर आत्महत्या कर लेती हैं। दाम्पत्य कलह के प्रभाववश होने वाली हत्याओं का प्रतिशत यद्यपि कुछ कम है। तथापि ऐसी हत्याओं की खबरें हमें प्रायः रोजाना सुनाई देती हैं।

दाम्पत्य कलह के कारण हत्या या आत्म हत्या करना दाम्पत्य जीवन की सबसे दुःखद एवं विभीषक घटना है। ज्योतिष शास्त्र के मनीषी आचार्यों ने इन घटनाओं का गम्भीरता पूर्वक विचार कर इस प्रकार के कुछ योगों का प्रतिपादन किया है, जिनमें ऐसा भयावह फल देने की क्षमता पायी जाती है।

(१) शुक्र से चतुर्थ एवं अष्टम स्थान में पाप ग्रह हो तो दाम्पत्य कलह के कारण उसकी पत्नी आत्महत्या कर लेती है।

(२) सप्तम स्थान में शुक्र तथा व्यय स्थान में चन्द्रमा होने पर व्यक्ति दाम्पत्य कलह वश पत्नी की हत्या कर देता है।

(३) लग्नेश एवं सप्तमेश दोनों अष्टम में हों तथा लग्न में दो पाप ग्रह हों तो दाम्पत्य कलह से परेशान होकर व्यक्ति आत्महत्या कर लेता है।

(४) सप्तमेश बुध पाप ग्रह के साथ नीच या शत्रु वर्ग में षष्ठ या अष्टम स्थान में हो तथा वह पाप ग्रहों के बीच हो और उस पर पाप ग्रहों की दृष्टि हो तो इस योग में उत्पन्न स्त्री अपने पति एवं बच्चों को मार डालती है।

(५) जिस स्त्री की कुण्डली में ३ पाप ग्रह सप्तम स्थान में हों वह अपने पति को मार डालती है।

उपसंहार

इस प्रकार उपयुक्त वर एवं वधू का चुनाव कर उनकी प्रकृति एवं रुचि की समानता को देखकर, उचित समय पर अच्छे योग वाले लड़की लड़कों का विवाह करना चाहिए। इस रीति से दाम्पत्य जीवन सुखमय बनाया जा सकता है।

०:०

मलयालम एवं प्राकृत भाषा से अनुदित

प्रश्न मार्ग—मूल संस्कृत श्लोक एवं सरल हिन्दी व्याख्या
(फलित ज्योतिष एवं प्रश्न सम्बन्धी प्राचीन एवं अनुपम ग्रंथ)

प्रस्तुत ग्रंथ तीन भागों में १००० पृष्ठों का विशाल संग्रह है। जिसमें हमारे दैनिक जीवनोपयोगी प्राय: समस्त प्रश्नों का फल कहने के लिए सरल एवं शास्त्रोक्त विधि का उदाहरण सहित वर्णन है।

३२ अध्यायों में विभक्त इस ग्रंथ के पहले दो भाग प्रश्नों का फलादेश करने की रीति, रोग विचार, शकुन, बाधाएँ एवं उनकी शांति के उपाय, विवाह प्रश्न, सन्तान प्रश्न, दाम्पत्य प्रेम जैसे अनेक महत्त्वपूर्ण प्रश्नों का यथार्थ फल कहने में सहायक हैं।

शेष १६ अध्याय तीसरे भाग में दिये गए हैं। जिसमें देव प्रश्न, राज्य प्रश्न, हार जीत, वर्षा विचार, यात्रा विचार, विदेश से लौटना, प्रणय विचार, खोई वस्तु की प्राप्ति, नष्ट जातक, स्वप्नफल एवं अष्टक वर्ग जैसे उपयोगी विषय इस तीसरे भाग की ही विशेषता हैं। वास्तव में यह सम्पूर्ण ग्रंथ ज्योतिष शास्त्र का एक मानक एवं सन्दर्भ ग्रंथ है जो विद्वानों के लिए ज्ञानवर्धक है।

मूल्य प्रथम भाग ४०.००, द्वितीय भाग २५.०० तृतीय भाग ८०.००

नष्टजातकम्—आचार्य मुकुन्द दैवज्ञ पर्वतीय के जीवन की साधना की अमूल्य देन है।

जिन व्यक्तियों की जन्मपत्री खो गई हो या जन्म-समय आदि का ध्यान ही न हो उनकी जन्मपत्री बनाने में सहायक यह ग्रंथ सुन्दर रूप में तैयार हुआ है। जिसमें प्राचीन ऋषि प्रणीत पद्धतियों एवं अपनी शोध व अनुभव का समावेश करके आचार्य श्री ने विद्वान् पाठकों के लाभार्थ प्रस्तुत किया है। मूल्य २५.००

माहेश्वर तन्त्रम्—हिन्दी टीका सहित

शिवगिरी कृत इस पुस्तक में तन्त्र शास्त्र के १. मारण, २. मोहन, ३. स्तम्भन, ४. विद्वेषण, ५. उच्चाटन, ६. आकर्षण, ८. यक्षिणी साधन, ९. रसायन प्रयोग आदि विषयों का संक्षिप्त किन्तु प्रामणिक विवेचन है। मूल्य ५.००